ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

मई २०२२



वर्ष–४ अंक–४२,
विक्रम संवत् २०७९
दयानान्दाब्द – १९८
कलि संवत् – ५१२४
सृष्टि संवत –१,९६,०८,५३,१२३

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(८७३९९७६६३०,
९९६३९७०९४०)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
महर्षि दयानन्द आश्रम
ग्राम सीताबाडी, केलवाड़ा
जिला–बारां (राजस्थान)
पिन कोड –३२५२१६

अनुक्रम

विषय

१. महर्षि दयानन्द की कार्यप्रणाली (सम्पादकीय)

२. तमाशबीनों के दौर में गिरगिट में तबदील...

३. Follow Satyarth Prakash (Intro -5)

४. वेदविद्या और ज्ञान–विज्ञान की महत्ता...

५. मृत्यु और मोक्ष

६. महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत ऋग्वेद संस्कृतभाष्य...

७. उपनिषद् का ईश्वर आहे

८. गरीबी और अमीरी के गुरु

९. सतरंगी दोहे

१०. खाद्यान्न की बर्बादी ने कुपोषण और भुखमरी

११. गीत

ईमेल – aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट – https://aryalekhakparishad.com/
फेसबुक – आर्य लेखक परिषद्

Digital

सम्पादकीय

महर्षि दयानन्द की कार्यप्रणाली – २

पिछले अंक में हमने बालकों के माता–पिता के दायित्व की चर्चा की थी। अब आगे आचार्य से सम्बंधित चर्चा करते हैं। महर्षि दयानन्द कहते हैं कि ''सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभाव रूप आभूषणों का धारण कराना माता–पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है''।

''यही माता–पिता का कर्त्तव्य कर्म, परम धर्म और कीर्ति का काम है जो अपने सन्तानों को तन, मन और धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षा युक्त करना''।

''जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करें वैसा प्रयत्न करें।

सदा सत्य भाषण, शौर्य, धैर्य, प्रसनवदन आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो, करावें''।

''जो–जो विद्या धर्मविरुद्ध भ्रान्ति जाल में गिराने वाले व्यवहार हैं, उनका भी उपदेश कर दें, जिससे भूत–प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो।''

''इस लिए आठ वर्ष के हों, तभी लड़कों को लड़कों की और लड़कियों को लड़कियों की शाला में भेज देवें''।

''वे लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोश एक दूसरे से दूर होनी चाहिए। जो वहां अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य अनुचर हों, व कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहें।

स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पांच वर्ष की लड़की भी न जावे।

सबको तुल्य वस्त्र, खान पान, आसन दिए जाएं, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र की सन्तान हों। सबको तपस्वी होना चाहिए।

उनके माता–पिता अपने सन्तानों से वा सन्तान अपने माता–पिताओं से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्र–व्यवहार एक दूसरे से कर सकें।

इस में राजनियम और जाति नियम होना चाहिए कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सकें। पाठशाला में अवश्य भेज देवें। जो न भेजे वह दण्डनीय हो।।

सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्य मात्र को पढ़ने का अधिकार है।''

उक्त उद्धरण हमने सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय और तृतीय समुल्लास से चुनकर दिए हैं। इनसे महर्षि दयानन्द शिक्षा प्रणाली को भली प्रकार समझा जा सकता है।

संक्षेप में कहा जाय तो –

1–सबको पढ़ने का अधिकार है।
2–सबको पढ़ना अनिवार्य है
3–सबके लिए समान शिक्षा व्यवस्था
4–स्त्री, पुरुष की पृथक्–पृथक् शिक्षा व्यवस्था
5–आचार्य कुल में रहकर शिक्षा
6–अभिभावकों वा सम्बन्धियों के सम्पर्क से रहित शिक्षा व्यवस्था

आर्य समाज के नेताओं ने शिक्षा के क्षेत्र में महर्षि दयानन्द की घोर उपेक्षा की है। केवल नाम दयानन्द का लेते रहे, काम सब उनके विचारों के विरुद्ध ही करते रहे। फलतः आर्यों के शिक्षा संस्थानों से आर्य तो बहुत कम निकले अनार्यों की बाढ़ आ गई।

आगे आचार्य वा अध्यापकों की चर्चा करते हुए कहा है कि –

''जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हों, उनसे शिक्षा न दिलावें, किन्तु जो पूर्णविद्यायुक्त, धार्मिक हों, वे ही शिक्षा देने योग्य हैं।''

आचार्य उसको कहते हैं कि जो सांगोपांग वेदों के शब्द अर्थ सम्बन्ध और क्रिया का जाननेहारा, छल कपट रहित, अतिप्रेम से सबको विद्या का दाता,

परोपकारी, तन–मन–धन से सबको सुख बढ़ाने में तत्पर, महाशय, पक्षपात किसी का न करे और सत्योपदेष्टा, सबका हितैषी धर्मात्मा, जितेन्द्रिय होवे। (संस्कार विधि उपनयन प्रकरण)

सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास में पढ़ाने वाले अध्यापक अध्यापिका कैसे हों? विदुरप्रजागर के श्लोक दिए गए हैं। वहीं पर यह भी लिखा है कि अध्यापक अपने सन्तानों के समान शिष्यों को समझें।

वर्तमान में गुरुकुलों में दीपक लेकर ढूंढने पर भी ऐसे आचार्य और अध्यापक मिलना कठिन है।

प्रायः हल्के चरित्र वाले लोभग्रस्त लोग ही मिलते हैं। गुरुकुलों को ऐसा नहीं बनाया जा सका कि लोग अपनी सन्तानों को वहां पढ़ाने के लिए लालायित रहते। उन्हें ऐसा बना दिया गया है कि हर एक जन अपने बच्चों को वहां भेजने में हिचकता है। भेजकर भी निश्चिन्त नहीं हो पाता। वहां लाडन और ताडन में समन्वय नहीं मिलता, अनुशासन और वात्सल्य में तालमेल नहीं मिलता।

भोजन भी प्रायः रुचिकर व तृप्तिकारक नहीं मिलता। ऐसे गुरुकुलों से पढ़कर निकलने वाले छात्र न अपने गुरुओं के प्रति श्रद्धालु और कृतज्ञ होते हैं और न ही आर्यसमाज के प्रति। उलटे विद्रोही बन जाते हैं। वस्तुतः गुरुकुल चलाना एक व्यवसाय बन चुका है।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में एक पाठ्यक्रम भी दिया है। उसमें लिखा है कि क्या पढ़ाया जाय और कैसे पढ़ाया जाय। उसके पश्चात् यह भी लिखा है कि क्या नहीं पढ़ाया जाय। पठनीय और अपठनीय ग्रन्थों के नाम भी गिनाए हैं। खेद पूर्वक कहना पड़ रहा है कि कथित गुरुकुलों में वही सब पढ़ाया जाता है, जिसे महर्षि दयानन्द ने पढ़ाने के लिए मना किया है और वह सब नहीं पढ़ाया जाता जिसे पढ़ाने का आग्रह किया है। स्पष्ट है कि हमारे शिक्षा संस्थानों में अनार्ष और अवैदिक पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है। लोग दयानन्द के नाम पर गुरुकुल खोलते हैं और काम उसके विरोधियों का करते हैं। यह दयानन्द के साथ गद्दारी है। यही कारण है कि वहां से पढ़ कर निकलने वाले छात्र आर्यसमाज के किसी काम नहीं आते।

इसका कारण यह है कि आर्यसमाज के नेताओं ने इस दिशा में कभी काम ही नहीं किया। मुझे तो इनके आर्य होने में भी सन्देह प्रतीत होता है। जिस दिन स्वामी श्रद्धानन्द को गुरुकुल कांगड़ी से निकाला गया था, उसी दिन से दयानन्द के साथ गद्दारी शुरू हो गई थी। होना तो यह चाहिए था कि आर्यसमाज एक आर्ष विश्वविद्यालय की स्थापना करता और सारे गुरुकुल उसी से सम्बंद्ध होते। सब दयानन्द प्रदर्शित पाठ्यक्रम से पढ़ाते और उसी पर भारत सरकार के शिक्षा विभाग से मान्यता लेते। यह भी हो सकता था कि किसी एक विश्वविद्यालय में दयानन्द आर्ष प्रकोष्ठ बनवा कर सभी गुरुकुल उससे जुड़ जाते, सबका एक पाठ्यक्रम होता जो ऋषि दयानन्द सम्मत होता।

अब भी समय है यदि ऐसा कर लिया जाए।

अस्तु, जब माता –पिता, आचार्य और आचार्य कुल ही महर्षि दयानन्द के अनुसार नहीं हैं, शिक्षा प्रणाली भी उनके विपरीत है, तब उनकी कल्पना का मनुष्य या आर्य कदापि नहीं बन सकता। जब आर्य नहीं तब आर्य समाज भी नहीं बन सकता।

काश, आर्यसमाज कविवर मैथिलीशरण गुप्त कथित वह दृश्य संसार के सन्मुख उपस्थित कर सकता–

पढ़ते हजारों शिष्य थे पर फीस ली जाती नहीं।
वह उच्च शिक्षा तुच्छ धन पर बेच दी जाती नहीं।।

– ✍ वेदप्रिय शास्त्री

आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम्।

(अथर्व ५.३०.७)

उन्नत होकर आगे बढ़ना हर जीव (मनुष्य) का धर्म है।

तमाशबीनों के दौर में गिरगिट में तबदील होती हमारी संवेदना

– ✍ अखिलेश आर्येन्दु

पेट्रोलियम उत्पादों के दाम घटाए जाने से देश भर में खुशी का माहौल है। पिछले कई सालों से पेट्रोलियम उत्पादों के दाम लगातार बढ़ते जा रहे थे कि अचानक केंद्र सरकार ने रीवर्स गेर में गाड़ी ले ली। अब समझाने की कोशिश की जा रही है कि देखते रहिए, सरकार अभी और भी रहमदिल होने वाली है। यही काम बजट पेश करने के एक महीने पहले भी किया जाता है। और जब बजट प्रस्तुत कर दिया जाता है तो उसके पक्ष में सरकारी और गैरसरकारी तंत्र जिसमें मीडिया भी शामिल है, सरकार के पक्ष में माहौल बनाने का कार्य करते हैं। और हम तमाशबीन की तरह चुपचाप देखते–सुनते रहते हैं। और महंगाई, बेरोजगारी, कुपोषण, भ्रष्टाचार, हत्या, डकैती, अवैध कब्जा, बीमारियों का बढ़ता रेला, बढ़ती आबादी, सड़क पर बढ़ती दुर्घटनाएं, दहेज उत्पीड़न, भ्रूण हत्या, बलात्कार और सामूहिक बलात्कार, मिलावट, वृक्षों की कटाई, घोटाले और विकट होते प्रदूषणों के दौर में तमाशबीन हो क्या हम सोच रहे हैं कि, हलाकान कब होंगे? यानी हलाकान होने की अपनी बारी का इंतजार कर रहे हैं? ऐसा लगता है, यह सब नए विकासवादी युग का विज्ञापन हैं जिन्हें हम टीवी स्क्रीन पर देख रहे हैं। विकास के नाम पर जब राजनीति और समाजनीति तमाशा बन कर रह जाए, तो हम तमाशबीन बन कर मजा देखेंगे या देश की तमाम समस्याओं के समाधान की दिशा में अपनी भूमिका निभाएंगे?

आज ऐसा लगता है, चारों तरफ तमाशे हो रहे हैं, और हम चुपचाप तमाशबीन हो तमाशा देखने में मशगूल हैं। यानी देश–समाज में सब कुछ ठीक–ठाक है। हमारे जानने वाले एक पत्रकार साथी ने उलटा सवाल किया, आप बताए, कौन–सा क्षेत्र ऐसा है, जहां तमाशा न हो रहा हो। यह बात उन्होंने झल्लाकर नहीं कही, बल्कि मेरे सवाल का जवाब देते हुए कही। मैं उस दिन निरुत्तर हो गया था।

तमाशे के इस नये विकासवादी दौर में गम्भीर मुद्दों और सवालों पर पर्दा डाला दिया जाता है। इसलिए सवाल, मुद्दे, योजनाएं, कार्य, विचार, विषय और घटनाएं सतही, बुद्धिहीन, मनोरंजन के स्तर पर खड़ी होती जा रही हैं। और गिरगिटी संवेदना के धनी लोग आनंद लेने में मशगूल हैं। आजादी के बाद गरीबी हटाने के तमाशे हों या किसानों के आत्महत्या की बढ़ती घटनाएं, सभी गिरगिटी संवेदनहीनता के शिकार हुए हैं। फिल्मों में बढ़ती हिंसा, अश्लीलता, कामुकता के दृश्य, भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने वाली तरकीबें, टीवी शो, खेल, धर्म, अध्यात्म, साहित्य और राजनीति सभी गिरगिटी संवेदनहीनता के शिकार हैं। सालों से क्रिकेट पर लगने वाले करोड़ों–अरबों के सट्टे (आईपीएल के बाद यह उद्योगधंधा हो गया है) पर हमारी संवेदना क्या कहती है?

हमारे जीवन मूल्यों के प्रतीक त्योहार और उत्सव सभी तमाशा बन गए हैं। त्योहारों और उत्सवों की मौलिकता और अर्थवत्ता गिरगिटी संवेदना में विद्रूप हो गए हैं। ऐसा लगता है, हम फिल्मों के खलनायक की भूमिका को अपने लिए सबसे सुरक्षित समझते हैं। त्योहारों, उत्सवों और मेलों में हो रहे हुड़दंग, तमाशे और मौज–मस्ती ही उनकी पहचान और अवसर बन

कर रहे गए हैं। देश, समाज और संस्कृति की छवि को बिगाड़ने वाले राजनेताओं, फिल्म निर्माताओं और अभिनेताओं और पोगापंथी कथावाचकों के कारनामों को भी गिरगिटी संवेदना की वजह से हम तमाशबीन हो आनंद लेने में ही अपनी बेहतर भूमिका देखने लगे हैं।

यूं तो हम चौबीस घंटे बहुत व्यस्त रहते हैं, लेकिन ताश खेलने, गप मारने, लड़ाई–झगड़े करने–करवाने और टीवी व मोबाइल के साथ तफरी करने में हमारे पास समय ही समय होता है। यह हमारे जिंदगी का असली रंग–रूप है। मजेदार बात यह है कि इसी में हम जिंदगी की सफलता देखने लगे हैं। पिछले चालिस सालों में (वैश्वीकरण के बाद जो तेजी से बढ़ा) विकास, प्रगति या सभ्यता के नाम पर सजावट–दिखावट–बनावट और सड़ी–गली परम्पराओं के साथ शोरगुल और तथाकथित पूजा–पाठ के जरिए ईश्वर–विश्वासी, आस्तिक या धार्मिक दिखाने का ढोंग, हमारी असल पहचान बन गई है। नई पीढ़ी के साथ पुरानी पीढ़ी के दरकते रिश्तों ने यह बता दिया है कि समझ–बूझ और संवेदना का युग गया, अब जिंदगी का नाम केवल और केवल मौज–मस्ती, तफरी करना, बात–बात में झगड़ा या मार–पीट करना, गुस्से में आपा खो देना और खुदकुशी कर लेना कोई फिल्म का हिस्सा नहीं, बल्कि आज की नई पीढ़ी की जिंदगी की हकीकत है। चारों तरफ तमाशा किया जा रहा है और हम उस तमाशे के दर्शक बन तालिया बजाने की भूमिका में आ गए हैं। यह उस समाज की हकीकत है, जो बडे जोश में कहता है– आने वाले कुछ वर्षों में हम फिर से विश्व गुरु बनने वाले हैं।

आजादी के बाद हम बदलते–बदलते ऐसी आजादी की तरफ बढ़ रहे हैं, जिसे समाजशास्त्र में अराकता कहते हैं। यानी हम जहां चाहें पत्थर फेंक सकते हैं। जितनी चाहें बसे या आफिस जला सकते हैं। हम जिसे चाहे दिनदहाड़े मार सकते हैं। जिस महिला के साथ जब चाहे जबरन फालतू की बातें कभी भी कर सकते हैं। अपना काम बनाने के लिए हर तरीका आजमाने की जैसी छूट आजाद भारत में मिली है, शायद दुनिया में और कहीं नहीं है। यह सब विकास की सरपट दौड़ लगाते हुए देखते–देखते हुआ है। महान् समाजवादी नेता राम मनोहर लोहिया ने कहा था– दिमाग जकड़ गए हैं, विचारों का स्थान प्रचारों ने ले लिया है। आज विचार शक्ति का गुलाम बन गया है। जब विचार शक्ति का गुलाम बनता है और विचारों का स्थान प्रचार ले लेता है, ऐसे दौर में तमाशबीन हो देखने के अलावा लोगों के पास बचा ही क्या है? बदलते जमाने ने जहां हमारी संवदेना का लोप हुआ है वहीं पर वैचारिकी हमारी खत्म हो गई है। विज्ञापनी संस्कृति ने व्यक्ति को 'रोबोट' में तबदील कर दिया है। एक मामूली सी कोई घटना मीडिया (चैनल और सोशल मीडिया) के जरिए किस तरह सनसनीखेज तमाशा बन जाती है। ऐसी बेसिर–पैर वाली घटनाएं हम रोजाना देखते–सुनते हैं, लेकिन हमारी उक्त घटनाओं को लेकर कोई राय हो या न हो, लेकिन मीडिया के जरिए हम उसे अहम मान लेते हैं और ऐसी प्रतिक्रिया करते हैं, जो सभ्य समाज से आई तो नहीं कही जाएगी।

पर्यावरण, पानी की बर्बादी, धरती की बर्बादी, वक्त की बर्बादी, पैसे की बर्बादी, बिजली की बर्बादी, संसाधनों की बर्बादी, भोजन, खाद्यान्न, फल और बीजों की बर्बादी के साथ उन सभी चीजों की बर्बादी करने में जो आनंद आता है, वह तो ईश भजन में भी नहीं आता होगा? हमारी बर्बादियों का दौर अभी कब तक चलेगा, कहना मुश्किल है, लेकिन इतना तो तय है कि तमाशाबीन बने रहने में लोग अब अपनी बुद्धिमानी समझने लगे हैं–यह इस समय की सबसे बड़ी त्रासदी और बिडम्बना है। फैशन, विज्ञापन और मनोरंजन ने

समाज को अपने साथ जकड़बंद कर लिया है। हमें लगता है फैशन के बगैर हम अधूरे और पिछड़े हैं। विज्ञापन ने सिखाया कि सादगी वाली जिंदगी बीते जमाने की बात हो गई। यही वजह है कि लोग अपने ज्ञान, अनुभव और परीक्षण से ज्यादा विज्ञापनों पर यकीन करने लगे हैं। टूजी, थ्रीजी, फोरजी और कुछ दिनों में फाइवजी की दौड़ में शामिल हो, हम जमाने के साथ चलते हुए खुद को दिखाना चाहते–हम किसी से कम नहीं। और ऐसा मोबाइल सेट कि उसमें वह सब कुछ हो जो करंट जरूरत को पूरी करता हो। और मनोरंजन का मतलब ही हो गया है, अश्लीलता, कामुकता, हिंसा, मार–धाड़ और धोखा देकर अपना काम बनाना। हम तड़क–भड़क में जितना यकीन करते हैं, उसका हजारवा हिस्सा भी उसकी असलियत पर नहीं करते। ऊपर से अपनी पीठ थपथपाने में भी हम पीछे नहीं।

पिछले सालों में समाज के कार्यों को भी हमने सरकार के पाले में डाल दिया है। इसलिए सरकार जो भी करती है, उसे हम तमीशबीन हो देखते–सुनते रहते हैं। तेल का दाम बढ़ा, स्वास्थ्य सेवाएं महंगी हो गईं, शिक्षा महंगी हो गई, रेल यात्रा महंगी हो गई, कागज महंगा हो गया, प्राइवेट स्कूल और अस्पताल जनता को लूट रहे हैं, भ्रष्टाचार बढ़ा, सुविधा रिश्वतखोरी (सभ्य लोग इसे सुविधा शुल्क कहते हैं?) बढ़ी, महंगाई बढ़ी, समाज में हिंसा, झगड़े–फसाद बढ़े, हत्या और बलात्कार की घटनाएं बढ़ीं–हम यह सब जानते और देखते रहते हैं। एक इंसान, देश के जागरूक नागरिक और समाज के जिम्मेदार व्यक्ति के रूप में क्या हम कुछ करते हैं? क्यों कि हमने मान लिया है, ये तो सब सरकार करेगी। यानी हमारा काम है, सरकारी, प्राइवेट और यहां–वहां जहां भी कुछ घटिया, खराब, बुरा, देशविरोधी, समाज विरोधी, संस्कृति विरोधी या धर्म विरोधी हो रहा है, वहां हम तमाशबीन बने रहकर परमानंद को प्राप्त करना है, बस! ******

महर्षि दयानन्द द्वारा यजुर्वेद हिन्दी भाष्य का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद

प्रथम बार महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य का अंग्रेजी अनुवाद आचार्य सतीश आर्य के द्वारा किया जा रहा है। यजुर्वेद का अंग्रेजी अनुवाद लगभग पूरा हो गया है, अभी संशोधन का कार्य प्रगति पर है। आचार्य सतीश जी ऐसे वेदज्ञ और अनुवादक हैं जिन्होंने अपने बल पर वैदिक वांग्मय के उत्थान में अनेक कार्य किए हैं। ज्ञातव्य है विश्व में वेद का अंग्रेजी अनुवाद मैक्स मूलर आदि का पढ़ाया जाता है। आचार्य सतीश आर्य ने महर्षि दयानन्द द्वारा किए गए वेद भाष्य का अंग्रेजी अनुवाद किया है। ज्ञातव्य है अभी तक ऐसा कार्य किसी ने नहीं किया था। अंग्रेजी अनुवाद के इस कार्य से विश्व में महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य को समझने का विद्त जनों को अवसर मिलेगा। जो भी विद्वान् आर्य जन महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य के अंग्रेजी अनुवाद पढ़ना –पढ़ाना चाहते हैं वे आचार्य सतीश आर्य के अंग्रेजी अनुवाद का अवलोकल एक बार अवश्य करें। आचार्य सतीश जी वेबसाइट के माध्यम से अंग्रेजी संस्कृत और हिंदी भाषा में वैदिक वांग्मय को आगे बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। आइए, हम सभी इनके कार्य का अवलोकन करें और इन्हें प्रोत्साहित करें।

FOLLOW SATYARTH-PRAKASH (INTRO-5)

– ✍ Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

The Satyarth-Prakash (Introduction)

Rishi Dayanand says :- "सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः। (मुण्डक उपनिषद् :3.1.6) अर्थात् सर्वदा सत्य का विजय, असत्य का पराजय और सत्य से ही विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है।" We Indians were fortunate to have Vedas gifted by God, as they are the Book of absolute truths and nothing to the contrary.

The rishis of India, and following them the kings of India, made it a general rule that what is preached in the Vedas would be performed and what is refused therein would be rejected. Also that all social customs would be followed as permitted in the Vedas and justice would be done according to the Vedas by the persons learned in the Vedas. To concise, following Vedas was the Dharma of one and all, and resultantly the people were happy, the society organised and prosperous, and the country strong & incredibly superb.

This order was maintained for about 197 crores of years. It was a great success to Indian Culture. But a few centuries before the War of Mahabharata, it was turned into disorder, and a long process of deterioration started. Gautam Buddha put up questions against the Vedas. Their answers were there in the Vedas, but there were no scholars to mouth those answers. The followers of Buddha came to a totally wrong conclusion that the objections against the Vedas were correct.

The Buddhists asked the society—Vedas or Buddha? The majority chose the latter. After big gaps they again chose Shankaracharya, Ramanujacharya, Guru Nanak, Tulsi Das etc., and went far away from the source of Dharma, the Four Vedas.

The above-mentioned persons had been good and very good persons. But the real Dharma is to follow the Vedas, and not individuals, howsoever virtuous they may be. For, the individuals have limited virtues, and their path ruins the next generations. Instead, the Vedas open treasures of virtues, and can lead

to happiness all generations to come.

Unfortunately, the land of the Vedas, took to a journey averse to Vedas. Once it started its downward journey, it kept on moving in the wrong direction without calculating the losses and miseries, or the generations and centuries. The days came when the nation of superlatives became a country of absurdities. Now there was distrust among the sections of society. All riches were looted; respect grounded to earth; the grand-children of the vedic scholars became illiterate; and even the kingdom went under the foreigners. Instead of worshiping the real God, people started worshiping idols, lingas and graves. What is the sense behind worshiping a linga? What is the substance in a grave, whether it is of a beggar or that of a saint?

When Rishi Dayanand analysed the demerits of society and causes of our being downtrodden for centuries, he gave the slogan of 'back to the Vedas'. He clearly pronounced that the chief cause of class-absurdities was not-knowing and not-following the Vedas. All people, good and bad, use the word 'truth'; but real truth lies in the Dharma or the Vedic knowledge. The Ancient India was great because our people learnt the Vedas and used to speak the Truth those days. When this system was reversed, Great India too became be-littled.

Let us now examine, how the things turned bad on giving up the truth, and how they were revived by following the same truth. First, look at the following mantra —

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च।

(Yajurveda:26-2)

This mantra preaches all sections of society, Brahmins, Kshatriyas, Vaishyas, Labour class, Women and Forest-dwellers, to read, learn and live the Vedas.

This is one truth which was at sometime reversed by the saying, 'Stree-Shudrau na-adhiyatam', meaning that the women and the Shudras let not study the Vedas. 'Shudras' means 50% of the people; 'women' means another 25%; the total coming to be 75% of the total population. This anti-Law and anti-Vedic rule commanded the 75% populace to refrain from studies and to remain illiterate. This false rule was followed for centuries, say, from Buddha to Dayanand, or (500+1850) 2350 years. When Rishi Dayanand reversed the 'Stee-Shudrau nadhiyatam'

rule, and he propounded for all men to study the Vedas, our society regained knowledge and values. This truth (All should study) has given success to Indian Society.

Secondly, the Shudras, averse to the Vedas, were declared asprishya or untouchable. This too was anti-Law, anti-Vedic and hence anti-Truth. The Vedas do not declare any person untouchable. When you can touch cows, horses, elephants, dogs, cats and even snakes, then how could human beings be untouchable? But this had happened. Not half but about 25% of the people were called untouchable, and so were they actually behaved with. When Rishi Dayanand, Mahatma Gandhi and other reformers fought for it socially, and the Government corrected it politically, then the Truth that 'All men are Equal' triumphed, and our society could make further progress.

Thirdly, there is another truth in the mantra —

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।

(Atharvaveda:11.5.18)

[The educated girl chooses a well-studied youth as husband.] This truth was duly followed in Ancient India. But during the period 'Buddha to Dayanand', the marriages were performed in childhood and settled in womb even. Following the said Reforms, the Government has enhanced the minimum age for bride as 18 years and for bridegroom as 21. This is near the Vedic truth of 16 and 25 respectively. This truth has also contributed to the national progress.

Fourthly, the above mantra also preaches the marriage to be settled under the agreement between bride and groom. During the medieval period, it was settled between the parents. This system brought a series of unhappy marriages, obstructing the social harmony. Nowadays it is again between the couple. Again the Vedic Truth has been accepted, and our society is quite sure to scale new heights in coming future.

The truth has originally been preached by God through the Vedas. Our scriptures have been saying that the truth triumphs. On the contrary, the human beings often try for the untruth to prevail. But our sages authenticate that only the truth triumphs. Rishi Dayanand has also emphasized the preachings of the scriptures and the sages. We should also abide by them all.

****

वेदविद्या और ज्ञान–विज्ञान की महत्ता को समझाता है वेदारम्भ संस्कार

– ✍ डॉ. विक्रम कुमार विवेकी

जीवन पर्यन्त जिससे जीवन का निर्माण होता है और जिसके कारण इहलोक और परलोक का मार्गदर्शन होता है, उसे हम दर्शन की भाषा में संस्कार कह सकते हैं। यज्ञोपवीत के बाद वेदारम्भ संस्कार गुरुकुल में हुआ करता है। वैदिक पुरातन परम्परा में वेदारम्भ को ब्रह्मचर्य जीवन का आरम्भ कहा जाता है। क्योंकि वेदविद्या और ज्ञान–विज्ञान का स्वाध्याय, चिंतन, मनन और अनुंसधान इसी संस्कार के साथ प्रारम्भ हो जाता है। आधुनिक युग में जहां शिक्षा का उद्देश्य मात्र अर्थ उपार्जन और उत्तम संसाधनों को इक्ट्ठा कर सुखी होने का है, वेदारम्भ की महत्ता पर कभी ध्यान ही नहीं दिया जाता। यही कारण है कि उच्च शिक्षित छात्र भी एकांगी जीवन को ही जीवन की सफलता मानता है। इसका अर्थ यह नहीं कि आधुनिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ज्ञान का पिपासु नहीं होता। यदि उसे वेदारम्भ संस्कार और वेद विज्ञान को प्रमाणिक व तर्कसंगत ढंग से समझाया जाए तो वह भी वेदों के पठन–पाठन की ओर आकर्षित हो सकता है। मुझे लगता है, समाज, देश, संस्कृति, धर्म, भाषा और सद्–साहित्य के उन्नयन के लिए नई पीढ़ी को वेदारम्भ संस्कार सहित सोलहों संस्कारों के सम्बंध में बताया जाना चाहिए। संस्कार की लेखमाला प्रत्येक अंक में प्रस्तुत करने का हमारा उद्देश्य यही है कि वैदिक संस्कारों से विमुख हो रही नई पीढ़ी को संस्कारों की महत्ता, उपयोग, लाभ और उद्देश्य की ठीक–ठीक जानकारी हो सके। इससे उनमें जहां वैदिक संस्कृति, धर्म, साहित्य, समाज और उद्देश्य की जानकारी करने की जिज्ञासा जाग्रत होगी वहीं पर उनमें मानव जीवन के प्रमुख उद्देश्य (मोक्ष) व चारों पुरुषार्थों के सम्बंध में भी जानकारी होगी। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् डॉ. विक्रम कुमार विवेकीजी द्वारा लिखित यह लेख उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'वेदों की ओर' से शृंखला की अगली कड़ी के रूप में दिया जा रहा है। आशा है पाठकगण को लेख प्रसंद आएगा।

– सम्पादक

मानव जीवन में अनिवार्यरूपेण करने योग्य सोलह संस्कारों में 'वेदारम्भ' संस्कार को सभी गृह्यसूत्रकारों, स्मृतिकारों व धर्म–शास्त्रकारों ने एक स्वर से स्वीकारा है। इस विषय में किसी का भी वैमत्य नहीं है। उपनयन के साथ–साथ ही वेदारम्भ–संस्कार के माध्यम से वेदों का अध्ययन प्रत्येक छात्र के लिए अनिवार्य था। ऋग्, यजुः, साम व अथर्व ये चार संहिताएँ मूल वेद माने जाते हैं। परन्तु मूलतः वेद वह सद्ज्ञान है जो जीवन का परिष्कार व जीवन का विकास करते हुए जीवन का निर्माण करता है। गणित, इतिहास, रसायन या वनस्पति शास्त्र के पढ़ लेने मात्र से यद्यपि भौतिक ज्ञान का विस्तार होता है और ये विद्याएँ भी वेदविद्या की भौतिकी विद्याएँ ही हैं तथापि व्यक्ति में गुण, कर्म, स्वभाव का निर्माण केवल इन पुस्तकों व लैक्चरों से नहीं होता। उस में ईमानदारी, स्वार्थहीनता, परसेवा, राष्ट्रवादिता, अर्थशुचिता या आध्यात्मिकता के भाव अंकुरित नहीं हो पाते। उसके लिए तो उपयुक्त वातावरण व

योग्यतम आचार्य का संग अनिवार्य है। उस सात्विक वातावरण, जो छात्रों के कोमल मस्तिष्कों को सही दिशा में प्रेरित कर सके, गुरुकुलीय परिवेश के अन्तर्गत आचार्यों की सन्निधि में ही प्राप्त हो सकता है। आज के प्राध्यापकों की अर्थकारी विद्या व असीमित मात्रा में, नीति–अनीतिपूर्वक, अन्धाधुन्ध धनार्जन विद्यार्थियों को पागलपन तो सिखा सकता है, उन्हें सही दिशा नहीं दे सकता है। इसलिए वैदिक शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य मानी जाती है। तत्कालीन नियमों के अनुसार सामान्य आयु सीमा तक नागरिकों को अपनी सन्तानें गुरुकुलों में आचार्य के पास शिक्षा के लिए भेजनी पड़ती थी। जो इस अधिनियम का उल्लंघन करते थे उन को पतित समझा जाता था तथा द्विज समाज से उन्हें बहिष्कृत किया जाता था। इसलिए मनु ने कहा था –

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः।।

जो वेद को न पढ़कर केवल अन्य शास्त्रों में श्रम करता है वह वंश सहित नष्ट होने लगता है। वेदाध्ययन को मनु ने संसार का परमतप कहा है। इसलिए प्राचीनकाल की यह प्रथा थी कि छोटे बालक घर में ही अभिभावकों के निकट रहकर अक्षर ज्ञान प्राप्त करते थे तथा किशोरावस्था की ओर अग्रसर बच्चे, जो जीवन निर्माण की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण व संवेदनशील है उस वयस्क आयु में, सुयोग्य आचार्यों, गुरुओं व ऋषियों के सान्निध्य में ही बिताते थे। इन शिक्षालयों में मुख्यतः आध्यात्मिक ज्ञान तदनन्तर भौतिक ज्ञान का समुचित समावेश होता था, जिससे विद्यार्थी आत्मिक दृष्टि से विवेकवान् बन कर समाज–सेवा में ही संलग्न होते थे। चूंकि वेद, ज्ञान व विज्ञान के भण्डार हैं। इसलिए अध्ययन का प्रमुख साधन उन्हें ही रखा जाता था। आज वह परम्परा, वह प्रथा, वह प्रणाली नितान्त नष्ट कर दी गई है जिसका परिणाम समग्र संसार को नितान्त स्वार्थ,
नितान्त उग्रवाद, नितान्त अशान्ति, दुःख व वैचेनी में भोगना पड़ रहा है।

वेदारम्भ संस्कार में विनियुक्त वैदिक ऋचाएँ व गृह्यसूत्रों के मन्त्र मानवमात्र को यह सन्देश देते हैं–वेद का आरम्भ, यानी ज्ञान का आरम्भ, यानी दुष्टाचार के त्याग के साथ, विद्यार्थी काल से ही जो अनिन्दित, पापरहित, अन्याय–अधर्माचरणरहित, न्याय–धर्माचरणसहित, लोकमंगलकारी कर्म हैं उन्हीं का सेवन व यथार्थ का ही ग्रहण जीवन में करते रहना और अज्ञान, अन्याय, अभाव व आलस्य की ओर एक कदम भी आगे मत बढ़ाना, इस संस्कार का यही सर्वग्राह्य सदुद्देश्य है, जिसके कारण ऋषियों ने इसे संस्कार का रूप दिया है।
इति

******

www.vedyog.net

योगदर्शन के प्रथम पाद – समाधिपाद पर योगसूत्रों और उनके व्यासभाष्य पर आधारित ५० प्रश्नों की प्रश्नमाला हमारी www.vedyog.net website पर online test के रूप में उपलब्ध है। हम हिन्दी एवम अंग्रेजी दोनों माध्यम से परीक्षा दे सकते है। इसमें हर प्रश्न के उत्तर हेतु ४ विकल्प दिए गए हैं। जिसमें आपको सही विकल्प को चुनना है। परीक्षा के माध्यम से हम अपने योगदर्शन से संबंधित ज्ञान की स्थिति का आकंलन कर पायेंगे।

मृत्यु और मोक्ष

– ✍ हेमदेव आर्य

सत्यार्थ प्रकाश के नवमसमुल्लास में महर्षि दयानंद सरस्वती जी यजुर्वेद के एक मंत्र का उल्लेख करते हैं, मंत्र इस प्रकार है :

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयम् सह,
अविद्यया मृत्युंतीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते

महर्षि कहते हैं कि **जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जनता है वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तर के विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है**।

अब इस में कुछ विचारणीय विषय हैं :

१विद्या क्या है : तो ऋषि कहते हैं कि विद्या अर्थात् **यथार्थ ज्ञान**
२ अविद्या क्या है : तो इस में ऋषि कहते हैं कि अविद्या अर्थात **कर्मोपासना (कर्म व उपासना)**
३ विद्या और अविद्या को साथ साथ जानना चाहिए?
४ पहले कर्मोपासना और बाद में मोक्ष?

१ विद्या यथार्थ ज्ञान है तो इस बारे में ऋषि कहते हैं की **"वेत्ति यथावतत्वम् पदार्थ स्वरूपं यया सा विद्या"** अर्थात् जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप का बोध होवे वह विद्या कहलाती है अर्थात् अनित्य में अनित्य, नित्य में नित्य, अपवित्र में अपवित्र, पवित्र में पवित्र, दुःख में दुःख, सुख में सुख, अनात्मा में अनात्मा और आत्मा में आत्मा का ज्ञान होना ही विद्या है, जब तक संसार में हम अपने व्यावहारिक जीवन में इस प्रकार का व्यवहार नहीं कर पा रहे हैं तब तक हमें यह समझना चाहिए कि हम अविद्या में ही जीवन जी रहे हैं ।

२ अविद्या के बारे में ऋषि कहते हैं कि **यथा तत्वस्वरूपम् न जानातिभ्रमादस्मिन्नन्यान्निश्चिनीती सावि्द्या** अर्थात् जिससे तत्वस्वरूप न जान पड़े अन्य में अन्य बुद्धि होवे वह अविद्या और आगे वे लिखते हैं कि कर्म और उपासना अविद्या इसलिए है कि यह बाह्य और अन्तर क्रियाविशेष नाम है, ज्ञानविशेष नहीं, महर्षि के अनुसार ज्ञान तब ही माना जाना चाहिए जब हम अपवित्र मिथ्याभाषण आदि कर्म करना रोक न दें और साथ ही उस परमपिता के स्थान पर पाषाण आदि मूर्तियों उपासना करना न छोड़ दें क्योंकि यही मिथ्याज्ञान ही बन्ध का मुख्य कारण है, इसका अर्थ स्पष्ट होता है कि कर्म और उपासना अविद्या ही है क्योंकि वह एक क्रिया विशेष ही है अर्थात् क्रिया चाहे शारीरिक हो या मानसिक वह अविद्या ही है और क्रिया या कर्म जीवन जीने के लिए आवश्यक हैं क्योंकि कर्मके बिना हमारा जीवन यापन संभव नहीं है और जब तक उसमे वह ज्ञान न मिल जाए जो विद्या रूपी ज्ञान है और उस प्रकार के कर्म हमारे होने न लग जाएँ, तब तक उसे यथार्थ ज्ञान नहीं कहा जा सकता है क्योंकि ज्ञान तभी यथार्थ ज्ञान बनता है जब उस ज्ञान के

अनुसार कर्म होने लग जायें।

३ ऋषि कहते हैं कि **विद्या और अविद्या को साथ ही साथ जानना चाहिए** क्योंकि कर्म उपासना और ज्ञान इसी स्पष्ट रेखा में कर्म करते हुए हमें मोक्ष की ओर अग्रसर होना है और ऋषि के अनुसार यही मार्ग है, पहले कर्म फिर उपासना और तदुपरांत ज्ञान, परन्तु इसमें एक प्रश्न उठता है कि ज्ञान अन्त में है तो बिना ज्ञान के कर्म किस प्रकार होंगे, तो इसका उत्तर इस प्रकार है कि कर्म जो करना है वह ज्ञान प्राप्ति की दिशा में करना है और उस अनुसार उपासना और पुनः ज्ञानवर्धन पुनः श्रेष्ठ कर्म श्रेष्ठ उपासना व उत्तमोत्तम ज्ञान को प्राप्त करते करते मोक्ष की ओर अग्रसर होना यही मानव जीवन का परम लक्ष्य है इस प्रकार विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जान कर मनुष्य मृत्यु को तर के मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।

४ ऋषि ने पहले कर्मोपासना का उल्लेख किया है और फिर ज्ञान का उल्लेख किया है तो उसका क्या कारण है, मेरी दृष्टि में ऐसा प्रतीत होता है कि व्यक्ति कर्म और उपासना कर के ही मृत्यु को तर सकता है अर्थात् मृत्यु के दुःख के बारे में यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर के (कि मृत्यु मेरी नहीं है यह केवल शरीर की है) और इसके पश्चात् ईश्वर, जीव व प्रकृति के बारे में यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर के ही मोक्ष को प्राप्त कर सकता है और इस विषय में ऋषि लिखते भी हैं कि बिना शुद्ध कर्म और परमेश्वर की शुद्ध उपासना के मृत्यु दुःख के पार कोई नहीं हो सकता है और इसके पश्चात् शुद्ध ज्ञान से ही मोक्ष को प्राप्त कर सकता है ।

******

आर्ष क्रान्ति के सुधी पाठकों से

समाज सुधार, संस्कृति उन्नयन और धर्म जिज्ञासा क्षेत्र की अनेक पत्रिकाएं सोशल मीडिया पर आपने देखी और पढ़ी होगी । आर्ष क्रांति पत्रिका का तेवर और स्वरूप कैसा है इसे जानने की जिज्ञासा आपके मन में पैदा होती है, तो यह समझना चाहिए आप एक विचारवान और जिज्ञासु किस्म के बुद्धिमान व्यक्ति हैं । हमें आप जैसे क्रांतिकारी और प्रगति गामी विचारवान व्यक्ति का साथ चाहिए। फिर देर किस बात की । नीचे लिंक पर जाइए और फार्म भर कर हमें भेज दीजिए। अब आप जुड़ गए हैं ऐसी संस्था और पत्रिका से जो एक आदर्श समाज, उन्नतशील संस्कृति और मानव मूल्यों के धर्म की स्थापना के लिए कृतसंकल्प है । आप एक शुभ संकल्पवान व्यक्ति हैं और यह पत्रिका भी शुभ संकल्पों को मूर्त रूप देना चाहती है, एक आदर्श समाज निर्माण में हमारी संस्था और पत्रिका से जुड़कर आप अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं । आपका हमें इंतजार रहेगा।

इस लिंक पर क्लिक करके यह फार्म अवश्य भरें

http://bit.ly/aarshkranti

नोट – फॉर्म को भरने के लिए अपने मोबाइल / कम्प्यूटर में इन्टरनेट अवश्य चालू रखे

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत ऋग्वेद संस्कृतभाष्य और भाषानुवाद

— ✍ आचार्य सतीश आर्य

क्या महर्षि दयानन्द सरस्वती के ऋग्वेद संस्कृत भाष्य का हिन्दी अनुवाद पुनः किये जाने की आवश्यकता है?

प्राकृत विषय पर विचार किये जाने से पहले भाष्य और अनुवाद क्या हैं, यह जान लेना आवश्यक है।

संस्कृत साहित्य की परम्परा में भाष्य की परिभाषा वामन शिवराम आप्टे के संस्कृत–हिन्दी कोश में भाष्य का अर्थ, व्याख्या, वृत्ति, टीका जैसा कि 'वेदभाष्य' में लिखा गया है। संस्कृत साहित्य की परम्परा में उन ग्रन्थों को भाष्य (शाब्दिक अर्थ व्याख्या के योग्य) कहते हैं, जो दूसरे ग्रन्थों के अर्थ कर बृहद् व्याख्या या टीका प्रस्तुत करते हैं। मुख्य रूप से सूत्र ग्रन्थों पर भाष्य लिखे गए हैं। पाणिनि के अष्टाध्यायी पर पतंजलि का व्याकरण महाभाष्य और ब्रह्मसूत्रों पर शांकर भाष्य आदि कुछ प्रसिद्ध भाष्य हैं।

पराशर पुराण में भाष्यकार के पाँच कार्य गिनाये गये हैं –

पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना।
आक्षेपेषु समाधानं व्याख्यानं पंचलक्षणम।।

अर्थात् मन्त्रों या श्लोकों का पदपाठ और विग्रह आदि करके उनको संस्कृत या अन्य भाषा में वाक्य के रूप में प्रस्तुत करना होता है। उनकी व्याख्या करके विषय को स्पष्ट किया जाता है और यदि कोई शङ्का हो तो उसका समाधान किया जाना चाहिए। भाष्य के ये पाँच लक्षण बताये गये हैं।

भाष्य कई प्रकार के होते हैं– प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक। जो भाष्य मूल ग्रन्थों की टीका करते हैं, उन्हें प्राथमिक भाष्य कहते हैं। किसी ग्रन्थ का भाष्य लिखना एक विद्वत्तापूर्ण कार्य माना जाता है। अपेक्षित छोटी टीकाओं को वाक्य या वृत्ति कहते हैं। जो रचनायें भाष्यों का अर्थ स्पष्ट करने के लिये रची गयीं हों, उन्हें वार्तिक कहते हैं।

भाष्यः– वेदों का सर्वप्रथम भाष्य ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है जिनमें वेद मंत्रों की व्याख्या मूलतः यज्ञ सम्बन्धी विभिन्न विधियों को लक्ष्य में रखकर की गई है। इनके साथ–साथ, यास्क के कथनानुसार वेद मंत्रों की व्याख्या निम्नोक्त नौ पद्धतियों से होती रही हैः (1) नैरुक्त, (2) वैयाकरण, (3) ऐतिहासिक, (4) परिव्राजक, (5) नैदान, (6) पूर्वयाजिक, (7) याज्ञिक, (8) आत्मप्रवाद (अधिदैवत पद्धति) तथा (9) अध्यात्म–पद्धति।

यास्क के पश्चात् सातवीं शती तक न जाने कितने भाष्यकारों ने वेदों का भाष्य किया होगा, किन्तु ये भाष्य आज उपलब्ध नहीं हैं। सातवीं शती में स्कन्दस्वामी, नारायण और उद्गीथ ने, इनके बाद माधव भट्ट, वेंकटमाधव, धानुष्कयज्वा, आन्दतीर्थ, आत्मानन्द आदि ने ऋग्वेद का सम्पूर्णतः अथवा अंशतः भाष्य किया। इन सबके पश्चात ऋग्वेद के प्रसिद्ध व्याख्याता सायणाचार्य का नाम उल्लेख्य है, जो कि चौदहवीं शती में विद्यमान थे। मुद्गल ने सायणाचार्य के वेदभाष्य पर वृत्ति प्रस्तुत की है। आधुनिक युग में वेद के व्याख्याकारों में श्रीमद्दयानन्द सरस्वती (19वीं शती) का नाम विशेषतः उल्लेख्य है, जिन्होंने वेद मंत्रों की अपनी व्याख्या में पदों का अर्थ प्राचीन पद्धति के अनुसार निरुक्तियों के माध्यम से किया। श्री अरविन्द, पण्डित जयदेव शर्मा, पण्डित हरिशरण सिद्धान्तालंकार, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर और आचार्य श्रीराम शर्मा आदि वेद के अन्य भाष्यकार हैं।

वेद का अर्थ समझने के लिये वैदिक वाङ्मय में अर्थबोध की पद्धतियों पर विचार करना आवश्यक है।

वेदों में भाषा–चिन्तन के साथ अर्थ के सम्बन्ध में भी विविध रूप में पर्याप्त चिन्तन हुआ है, जिस प्रकार समस्त भाषा चिन्तन का मूल आधार तत्त्व वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है उसी प्रकार अर्थ चिन्तन के भी मूलसिद्धान्त वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं। वास्तव में अर्थविचार की विशाल परम्परा ऋग्वेद काल से ही प्रारम्भ होकर अन्य संहिताओं ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों और वेदांगों से अत्यन्त विकसित हुई है, इन ग्रन्थों में अर्थपरक कई विषयों पर यत्र–तत्र संकेतों के रूप में अथवा स्पष्ट रूप में प्रकाश डाला गया है। इससे वैदिक अर्थचिन्तन का

स्वरूप भी स्पष्ट होता है। अर्थबोध की कई पद्धतियों का निर्देश वैदिक वाङ्मय में संकेततः अथवा स्पष्ट प्राप्त होता है। बाद में वे ही पद्धतियाँ भारतीय अर्थविज्ञान के अन्तर्गत अर्थबोध की विविध विधियों के रूप में क्रमबद्ध और अधिक वैज्ञानिक रूप में विकसित हुई है।

भाषा की आत्मा अर्थ है। शब्द का प्रयोग अर्थ के लिए ही किया जाता है। अर्थात् अर्थ के अभाव में भाषा का कोई महत्त्व नहीं है। शब्द तो अर्थ की अभिव्यक्ति का ही माध्यम है। अर्थ की प्रतीति कराने के लिए ही व्यवहार में शब्द का प्रयोग किया जाता है।' अथवा यह कह सकते हैं कि भाषा का शब्द शरीर है तो अर्थ उसकी आत्मा। जिस प्रकार शरीर की सहायता से ही आत्मा का प्रत्यक्षीकरण होता है, उसी प्रकार शब्द की सहायता से अर्थ का बोध होता है। भाषा के द्वारा प्रकाशित अर्थ के महत्त्व के विषय में मानव प्राचीन काल से ही विचार करता चला आ रहा है। वेदों में भाषा–चिन्तन के साथ अर्थ के सम्बन्ध में भी विविध रूप में पर्याप्त चिन्तन हुआ है, जिस प्रकार समस्त भाषा चिन्तन का मूल आधार तत्त्व वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है उसी प्रकार अर्थ चिन्तन के भी मूलसिद्धान्त वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं। वास्तव में अर्थविचार की विशाल परम्परा ऋग्वेद काल से ही प्रारम्भ होकर अन्य संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों और वेदांगों से होकर अत्यन्त विकसित हुई है, इन ग्रन्थों में अर्थपरक कई विषयों पर यत्र–तत्र संकेतों के रूप में अथवा स्पष्ट रूप में प्रकाश डाला गया है। अर्थ सम्बन्धी इन विचारों के आलोचनात्मक विवेचन द्वारा एक ओर भारतीय अर्थ चिन्तन का प्रारम्भिक और मूल रूप प्रकाश में आता है तो दूसरी ओर इससे वैदिक अर्थचिन्तन का स्वरूप भी स्पष्ट होता है। इस सन्दर्भ में यास्क रचित निरुक्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यास्क ने शब्दार्थ के क्रमबद्ध चिन्तन की प्राचीन परम्परा को प्रस्तुत किया है। निरुक्त में अर्थातिशय, अर्थविकास, अर्थभेद, पदार्थ, वाक्यार्थ, नामार्थ, आख्यातार्थ, अर्थबोध आदि विषयों पर विस्तृत विचार किया गया है। अर्थ एक गम्भीर तत्त्व है क्योंकि इसका सम्बन्ध मनुष्य के मस्तिष्क से है क्योंकि अर्थतत्त्व का अभिप्राय भाषा के उन अंशों से है जो अर्थ अथवा विचार का बोध कराते हैं। शब्द का प्रतीकात्मक मूल्य अर्थ है जो सर्वत्र मानसिक बिम्ब के रूप में ही होता है। कोई भी शब्द जिस बोध के प्रयोजन से उच्चारित किया जाता है वही उसका अर्थ होता है। वैदिक वाङ्मय में शब्द की अपेक्षा अर्थ को अधिक महत्त्व दिया गया है।

ऋग्वेद के दशम मण्डल के 71वें सूक्त में भाषा–तत्त्व और अर्थ–तत्त्व का महत्त्वपूर्ण विवेचन प्राप्त होता है। इस सूक्त में शब्द के अन्तर्निहित तत्त्व अर्थ, उनके जानने वालों की प्रशंसा तथा न जानने वालों की हीनता प्रतिपादित है। इसके दो मन्त्रों को महर्षि पतंजलि ने भी अपने महाभाष्य में उद्धृत किया है। ऋग्वेद के ही प्रथम मण्डल में यह मन्त्र वाणी के सम्बन्ध में कहा गया है –

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेंगयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ।।

उपर्युक्त श्लोक को पतंजलि ने वाक्तत्त्व के विषय में महाभाष्य में उद्धृत किया है तथा नागेशभट्ट जैसे वैयाकरणों ने उसकी व्याख्या करते हुए वाणी की चार अवस्थाओं परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी पर प्रकाश डाला है। अर्थ तत्त्व का जैसा सूक्ष्म विवेचन इन मन्त्रों में प्राप्त होता है, उससे यह तथ्य प्रकट होता है कि ऋग्वैदिक काल में भी भारतीय अर्थचिन्तन कितना विकसित था।

शब्दों के अनेकार्थक होने से वेद का अर्थबोध हमेशा ही कठिन रहा है। वेद के किस मन्त्र या किस शब्द से क्या अर्थ मूलतः अभिप्रेत रहा है, यह कहना आज भी सरल नहीं है। जब हम वेदों में प्राप्त अर्थविषयक चिन्तन की समीक्षा करते हैं तो हम देखते हैं कि वेद में अपने अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए कुछ विधियों का यथास्थान ग्रहण किया गया है। अर्थबोध की कई पद्धतियों का निर्देश वैदिक वाङ्मय में संकेत रूप में अथवा स्पष्ट प्राप्त होता है। यही तो वेद की विशेषता है कि वह केवल अर्थज्ञान की उपयोगिता का ही विचार नहीं करता अपितु वेदार्थ के स्पष्टीकरण में भी योगदान देता है बाद में वे ही पद्धतियाँ भारतीय अर्थविज्ञान के अन्तर्गत अर्थबोध की विविध विधियों के रूप में क्रमबद्ध और अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक रूप में विकसित हुई है।

वैदिक संहिताओं में अधिकतर अर्थ–चिन्तन में तीन प्रकार मिलते हैं– 1. व्याकृति, अर्थात् निरुक्ति द्वारा शब्दों के धातुगत अर्थ का सहज संकेत। 2. कोश 3. पर्याय योजना अर्थात् एक ही अर्थ के लिए अनेक पर्यायों का प्रयोग। ब्राह्मण ग्रन्थों में इसके अतिरिक्त गुण कथन और उपमा को भी अर्थबोध के लिए अपनाया गया है, उपनिषदों में विशेषरूप से अर्थचिन्तनार्थक उपमा, निषेध और प्रतीकों का प्रयोग किया गया है, वेदांग ग्रन्थों में अर्थबोध के आधार के रूप में कोश और व्युत्पत्ति का प्रधानतया निर्देश है, इनमें से कोष का संकेत ब्राह्मणों में ही दिखाई दे जाता है। व्युत्पत्ति का सूत्रपात संहिताओं में सर्वप्रथम दिखाई देता है तथा बाद में विस्तार के साथ अन्य वैदिक ग्रन्थ तथा वेदांगों में दिखाई देता है।

व्युत्पत्ति–अर्थ–निर्देश का प्रारम्भ प्राचीनतम ग्रंथ' ऋग्वेद' से ही दिखाई देता है। यह सत्य है कि वैदिक मंत्रों का मूल उद्देश्य व्युत्पत्ति देना नहीं है, तथापि प्रकारान्तर से जो भी व्युत्पत्तियाँ आ गयी हैं, वे व्याकरण का मूल रूप वेदों में है सिद्ध कर देती है। युधिष्ठिर मीमांसक ने इस विषय में चिंतन करते हुए कतिपय ऐसे मंत्रों को उद्धृत किया हैं, जिनमें व्युत्पत्ति या निरुक्ति का ही निर्देश ध्वनित होता है–

1. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः।'' ('यज्ञ' की निरुक्ति यज् धातु से है)
2. ये सहांसि सहसा सहन्ते।" ('सहस्' की निरुक्ति सह धातु से है)
3. पूर्वीरश्नन्तावश्विना।" ('अश्विन्' की निरुक्ति अश् धातु से है)
4. स्तोतृभ्यो महते मघम्। '('मघ' की निरुक्ति मह् धातु से है)
5. धान्यमसि धिनुहि देवान्।" ('धान्य' की निरुक्ति धिन्व् धातु से है)
6. केतपूः केतं न पुनातुः।'' ('केतपूः' की निरुक्ति केतपू धातु से है)
7. येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा।'' ('पवित्र' की निरुक्ति पू धातु से है।
8. तीर्थैस्तरन्ति।'' ('तीर्थ' की निरुक्ति तू धातु से है)
9. यददः सं प्रयतीरहावनदता हते। तस्मादा नद्यो नाम स्थ....।" (यहाँ 'नदी' शब्द की निरुक्ति नद् से है)

इस प्रकार सभी संहिताओं के पदों की व्युत्पत्ति की जा सकती है।

महर्षि दयानन्द सरस्वतीकृत वेद भाष्य की विशेषताएँ– महर्षि द्वारा सम्पूर्ण यजुर्वेद, ऋग्वेद के 7 वें मणडल के 62 वें सूक्त के द्वितीय मन्त्र तक और अपने अन्य ग्रन्थों, जैसे ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, पञ्चमहायज्ञविधि, आर्याभिविनय आदि में वेद के विभिन्न मन्त्रों का भाष्य किया गया है। आर्यजगत् के प्रसिद्ध वेदविद्वान् स्मृतिशेष पं० रामनाथ वेदालङ्कार के अनुसार महर्षि दयानन्द सरस्वतीकृत वेद भाष्य की विशेषताएँ संक्षिप्त रूप से इस प्रकार हैं–

स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य की विशेषताएँ –

महर्षि दयानन्द सरस्वती का वेदभाष्य पूर्ववर्ती भाष्यों की अपेक्षा अनेक नवीन विशेषताएं रखता है, जिनमें से कुछ का यहां दिग्दर्शन यहाँ किया जा रहा है।

१. वैदिक देवों का अर्थानुसन्धान –

वेदों में अग्नि, वायु, इन्द्र, अश्विनौ, मित्र, वरुण, अर्यमा, रुद्र, सविता आदि पुंलिंगी का तथा अदिति, उषा, सरस्वती, पृथिवी आदि स्त्रीलिंगी देवताओं का पुनः–पुनः वर्णन आता है। उवट, सायण, महीधर आदि पूर्ववर्ती भाष्यकारों ने इन्हें पृथक् स्वतन्त्र देव–देवियां स्वीकार किया था तथा यह माना था कि वेदवर्णित प्रत्येक प्राकृतिक देवता उषा, सूर्य, पृथिवी, आपः, नदी, ओषधि आदि का एक–एक स्वतन्त्र चेतन अभिमानी–देवता है, उसी चेतन देवता की इन नामों से वेद में स्तुति की गयी है। जिन देवताओं का प्राकृतिक स्वरूप निश्चित नहीं है, वे भी स्वतन्त्र देवता हैं। यज्ञों में आवाहन करने पर ये देवता हवि से प्रसन्न होकर यजमान को पुत्र, पौत्र, पशु, धन आदि प्रदान करते हैं। परन्तु स्वामी दयानन्द ने प्रमाणपुरस्सर यह घोषणा की कि वेद अनेकेश्वरवादी नहीं है, अपितु वेदों के विभिन्न पुंलिंगी और स्त्रीलिंगी देवता पिता और माता के रूप में एक परमेश्वर के ही गुणकर्म–बोधक विभिन्न नाम हैं। वेद की वर्णन–शैली की यह अद्भुतता है कि साथ ही वे देवता शरीर में आत्मा, मन, बुद्धि, प्राण, अपान, उदान, चक्षु, श्रोत्र आदि के राष्ट्र में राजा, सेनापति, न्यायाधीश, गृहपति, आचार्य आदि के और भौतिक जगत् में प्रकृति, सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, जल आदि के भी वाचक होते हैं। जहां

जैसा प्रकरण हो वहां वैसे अर्थ करने चाहिएं। इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर दयानन्द भाष्य में प्रसंग या औचित्य के अनुसार 'अग्नि' के अग्रणी, विज्ञानस्वरूप, सर्वविद्योपदेष्टा, स्वयं प्रकाशमान, प्रकाशक परमेश्वर, विद्वान् अध्यापक, उपदेशक, नायक राजा, वीर सेनापति, यज्ञाग्नि, शिल्प में प्रयोक्तव्य भौतिक अग्नि आदि अर्थ किये गये हैं। 'इन्द्र' को ऐश्वर्यशाली परमेश्वर, शत्रुविदारक राजा, सभाशालासेनान्यायाधीश, विद्यार्थियों की जड़ता का विच्छेदक गुरु, वायु, विद्युत, सूर्य आदि अर्थों में ग्रहण किया गया है। 'रुद्र' को दुष्टरोदक परमात्मा, जीवात्मा, वैद्य, वायु, प्राण, शत्रुसंहारक सेनापति, ब्रह्मचारी आदि अर्थों में व्याख्यात किया गया है। 'अश्विनी' के राजा अमात्य, प्राण–अपान, जल–अग्नि, वायु–विद्युत, सूर्य–चन्द्र, अध्यापक उपदेशक, सभेश–सेनेश आदि अर्थ किये गये हैं।

वैदिक देवियों को भी स्वामी दयानन्द ने भौतिक जगत् एवं शरीर में घटाने के साथ–साथ समाज में भी घटाया है। तदनुसार उनके भाष्य में 'उषा' का अर्थ प्रभातवेला या सन्ध्या के अतिरिक्त उषा के समान ज्ञान से समस्त रूपों की प्रकाशिका विदुषी स्त्री भी किया गया है। इसी प्रकार 'सरस्वती' का अर्थ वाणी एवं वेगवती नदी के अतिरिक्त विदुषी कन्या, प्रशस्त ज्ञानवती विदुषी स्त्री, प्रशस्तविज्ञानयुक्ता पत्नी, शिक्षिता माता एवं वेदादिशास्त्रविज्ञानयुक्ता अध्यापिका भी किया है।'' प्रचुरता के साथ वैदिक देवताओं को सामाजिक या राष्ट्रिय अर्थों में लेकर सम्पूर्ण मन्त्र को सामाजिक या राष्ट्रपरक अर्थ की रंगत देना स्वामी दयानन्द की ही महत्त्वपूर्ण देन है । इससे पूर्व ब्राह्मणग्रन्थों में ऐसे अर्थों के क्वचित् संकेतमात्र दिये गये थे। स्वामी दयानन्द के द्वारा किये गये अर्थ वेदों ब्राह्मणग्रन्थों, आरण्यक आदि साहित्य से समर्थित हैं।

२. *वेदमन्त्रों की अनेकार्थता –*

मन्त्रों के अध्यात्म, अधिदैवत, अधियज्ञ आदि अर्थ करने की पहले से ही प्रवृत्ति थी। यास्क ने अपने निरुक्त में कई स्थलों पर इस प्रकार की मंत्र व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं। स्वामी दयानन्द ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। उन्होंने मन्त्रार्थों को दो भागों में विभक्त किया है पारमार्थिक अर्थ और व्यावहारिक अर्थ।'' इन्हीं दो में पूर्व आचार्यों से निर्धारित अध्यात्म, अधिदैवत, अधियज्ञ, अधिभूत आदि सकल अर्थ प्रक्रियाएं समाविष्ट हो जाती हैं। परमेश्वर तथा परमेश्वर–प्राप्ति सम्बन्धी अर्थ पारमार्थिक प्रक्रिया में और शेष सब अर्थ व्यावहारिक प्रक्रिया के अन्तर्गत होते हैं। स्वामी दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में वेदमन्त्रों की अनेकार्थक योजना अनेक स्थलों पर की है। ऋग्वेद के प्रथम पांच अग्निदेवताक मन्त्रों की व्याख्या उन्होंने परमेश्वरपरक तथा शिल्पाग्निपरक की है। 'धूरसि धूर्व धूर्वन्तम्' यदु० १.८ में भी अग्नि के अर्थ परमेश्वर तथा शिल्पसाधक अग्नि दोनो लिये हैं। वायुदेवताक ऋ० १.२.१ ३ इन तीनों मन्त्रों की व्याख्या परमेश्वर तथा भौतिक वायु दोनो पक्षों में की है। इसी प्रकार इन्द्र देवता, सूर्य देवता और सोमासि सत्पति ऋ० १.९१.५ आदि मन्त्र श्लेष से परमेश्वर, शालाध्यक्ष तथा सोम ओषधी तीन पक्षों में व्याख्यात किया गया है।

३. *ऐतिहासिक अर्थों की उपेक्षा –*

वेदमन्त्रों में प्रयुक्त नामों को किन्हीं ऐतिहासिक ऋषियों, ऋषिकाओं, राजाओं, रानियों, नदियों, नगरों आदि के नाम मान लेने की प्रवृत्ति वेदभाष्यकारों में पायी जाती है। वेदार्थ का ऐतिहासिक सम्प्रदाय यास्काचार्य (७०० ई० पू०) से भी पहले विद्यमान था, क्योंकि उन्होंने अपने निरुक्त ग्रन्थ में कई प्रसंगों में इस सम्प्रदाय का उल्लेख किया है। पर अपनी सम्मति उन्होंने इसके विरोध में ही दी है।'' विदेशों के विद्वान् वेदों में लौकिक इतिहास भले ही मानें, पर आश्चर्य तो तब होता है जब वेदों को सृष्टि के आदि में प्रकट हुआ ईश्वरीय ज्ञान मानने वाले स्कन्दस्वामी, उवट, सायण, महीधर आदि भारतीय भाष्यकार भी अनेके स्थलों पर वेदमन्त्रों की इतिहासपरक व्याख्याएं करते हैं। स्वामी दयानन्द ने अपने सुदीर्घ वेदभाष्य में एक स्थल पर भी इतिहास नहीं माना है। ऋ० भा०भू० में वे स्पष्ट घोषणा करते हैं कि वेदमन्त्रों में इतिहास का लेश भी नहीं है, अतः सायणाचार्य आदि ने जहां–कहीं इतिहास का वर्णन किया है वह भ्रममूलक ही है।''

वेदों में लौकिक इतिहास न होने की स्थापना तो अपने ऋग्वेदभाष्य के उपोद्घात में सायण ने भी की थी,'' पर वेदभाष्य में वे उसका निर्वाह नहीं कर पाये। किन्तु महर्षि दयानन्द ने अपनी प्रतिज्ञा का अपने वेदभाष्य में सर्वत्र निर्वाह किया है। वे अगस्त्य, अत्रि, अम्बरीष, कुत्स, कुशिक, त्रसदस्यु, दिवोदास, वसिष्ठ,

वामदेव, विश्वामित्र, शुनःशेप प्रभृति समस्त ऐतिहासिक प्रतीत होने वाले नामों की नैरुक्त पद्धति से व्याख्या करते हैं। सचमुच वेद में लौकिक इतिहास की कल्पना वेद को जर्जर कर देने वाली है। वेदों में इतिहास न मान कर योगार्थ के बल से जो अर्थ करने की पद्धति है उसी से वेद का रहस्यार्थ हृदयंगम किया जा सकता है।

४. पूर्व विनियोगों से स्वतन्त्र वेदार्थ –

पूर्वकाल में दर्श, पौर्णमास, वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध, पुरुषमेध, सोमयाग आदि विविध श्रौत यागों में ब्रह्मयज्ञादि पञ्च यज्ञों में, जातकर्मादि विभिन्न संस्कारों में तथा अन्य अनेक विधि–विधानों में वेदमन्त्रों का विनियोग किया गया था। उन विनियोगों की परीक्षा करने से ज्ञात होता है कि उनमें कुछ विनियोग रूपसमृद्ध अर्थात् मन्त्रार्थ से अनुमोदित हैं और कुछ अरूपसमृद्ध हैं अर्थात् या तो मन्त्रार्थ से विरुद्ध हैं या मन्त्रार्थ से असम्बद्ध हैं। ब्राह्मणग्रन्थकारों ने रूपसमृद्ध विनियोगों से ही यज्ञ की परिपूर्णता मानी थी। '' तथापि अरूपसमृद्ध विनियोग भी चलते रहे और उन्हें प्रामाणिक भी माना जाता रहा। स्वामी दयानन्द ने यह स्पष्ट घोषणा की कि पूर्वकृत विनियोगों में जो युक्तिसिद्ध, वेदादि प्रमाणों के अनुकूल और मन्त्रार्थ का अनुसरण करने वाले विनियोग हैं, वे ही ग्राह्य हो सकते हैं।'' साथ ही यह भी माना कि वेदव्याख्या के लिए रूपसमृद्ध विनियोगों का भी अनुसरण करना अनिवार्य नहीं है, उन विनियोगों से स्वतन्त्र होकर भी वेद के व्याख्यान किये जा सकते हैं। अतएव उन्होंने ऋग्वेद एवं यजुर्वेद का अपना भाष्य पूर्व विनियोगों का अनुसरण किये बिना ही लिखा है और भूमिका में यह निर्देश कर दिया है कि मैं तो शब्दार्थतः ही मन्त्रों की व्याख्या करूंगा, जिन्हें अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त कर्मकाण्ड का परिचय पाना हो वे ऐतरेय, शतपथ, पूर्वमीमांसा, श्रौतसूत्रादि को देख सकते हैं, किन्तु उनमें जो वेदविरुद्ध विनियोग हैं उन्हें न मानें ।

५. वेदों में विविध विद्याओं का आविष्कार –

महर्षि से पूर्व के भाष्यकारों में से अधिकांश ने वेदों में कर्मकाण्ड के अतिरिक्त अन्य किसी विद्या का आविष्कार नहीं किया था। परन्तु स्वामी दयानन्द 'वेदों में सब विद्याएं हैं' यह घोषणा करते हैं।'' उन्होंने अपने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ में ब्रह्मविद्या, सृष्टिविद्या, पृथिव्यादिलोकभ्रमणविद्या, आकर्षणानुकर्षणविद्या, प्रकाश्यप्रकाशकविद्या, गणितविद्या, उपासनाविद्या, मुक्तिविद्या, नौविमानादि निर्माणचालनविद्या, तारयन्त्रविद्या, वैद्यकविद्या, राजविद्या, यज्ञविद्या, कृषि बिद्या, शिल्पविद्या, वर्णाश्रमविद्या आदि विविध विद्याओं का वैदिक प्रमाणों सहित प्रतिपादन किया है तथा स्वकीय वेदभाष्य में भी इनका प्रकाश किया है।

६. कतिपय अन्य विशेषताएं –

स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य में कुछ अन्य विशेषताएं भी पायी जाती हैं, जो अन्य वेदभाष्यकारों के भाष्यों में उपलब्ध नहीं होतीं । उदाहरणार्थ, कतिपय विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

(1) दयानन्द सरस्वती वेदमन्त्रों के अश्लील, परमात्मा के स्वभाव एवं सृष्टिनियम के विरुद्ध और लोकविद्वेषकारी अर्थ कहीं नहीं करते ।

(2) वे वेदों में मांसभक्षण, पशुबलि, जड़पूजा, मृतकश्राद्ध, जादू टोना, असंभव चमत्कार आदि नहीं मानते। जिन भाष्यकारों ने इस पक्ष के अर्थ अपने वेदभाष्यों में किये है उन्हें वे भ्रान्त ठहराते हैं।

(3) निर्वचनशास्त्र को भी उनका विशेष योगदान है, यतः अपने वेदभाष्य में तथा उणादिकोष की व्याख्या में उन्होंने अनेक नवीन निर्वचन प्रस्तुत किये हैं।

(4) वे वैदिक शब्दों को व्यापक अर्थों में लेते हैं। यथा देव शब्द से परमेश्वर, विद्वान्, माता, पिता, आचार्य, अतिथि, ज्ञानेन्द्रिय आदि का ग्रहण करते है। '' यज्ञ में केवल अग्निहोत्र को ही नहीं, प्रत्युत देवपूजा, संगतिकरण, शिल्प, दान आदि को भी संमिलित करते हैं। इसी प्रकार विभिन्न वैदिक शब्दों की व्याख्या की गई है।

(5) उनका वेदभाष्य मानव को अभ्युदय तथा निःश्रेयस दोनों की प्राप्ति के लिये उद्बोधन देता है। लौकिक उत्कर्ष में वे समग्र भूमण्डल के धर्मपूर्ण चक्रवर्ती राज्य तक पहुंचाते हैं, तो दिव्य उत्कर्ष में मोक्ष के परमानन्द तक ले जाते हैं।

वस्तुतः वेद 'विश्ववारा प्रथमा संस्कृति एवं भारतीय विचारधारा के आधारभूत स्तम्भ हैं। वेदों की रचना–शैली बड़ी अद्भुत है। एक–एक ऋचा अनेक अर्थों का प्रतिपादन करती है। जिस प्रकार उससे आध्यात्मिक रहस्यों का ज्ञान प्राप्त होता है, उसी

प्रकार उससे आधिभौतिक तथा आधिदैविक सत्य भी प्राप्त होता है। ऋषि दयानन्द ने वेदों की इस अद्‌भुत और अनन्त रत्नगर्भा निधि को उसपर पड़ी हुई धूलि और गर्द–गुबार को झाड़–पोंछकर विशुद्ध रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया। वर्त्तमान काल के सुप्रसिद्ध दाक्षिणात्य विद्वान् और योगी श्री माधव पुण्डलीक पण्डित ने 'Mystic Approach to the Veda and Upanishad' में वेदों के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द के दृष्टिकोण तथा उनके वेदभाष्य के महत्त्व की चर्चा करते हुए लिखा है– 'गत शताब्दी के मध्य में वेदों को पुनः भारत के राष्ट्रिय जीवन में सर्वोत्कृष्ट रूप से प्रतिष्ठापित करने के लिए भारतीय संस्कृति के प्रबल पोषक स्वामी दयानन्द सरस्वती के रूप में प्राप्त हुए। उन्होंने ज्योतिर्मय वेदों के सम्बन्ध में भ्रान्तियों और पक्षपातपूर्ण पाश्चात्य विचारधारा का प्रत्याख्यान करके प्रत्येक भारतीय को प्रेरणा की कि वह सत्य को सीधा देखने का प्रयत्न करे और इस बात को पहचाने कि वेद वस्तुतः ईश्वरीय ज्ञान है। उसने अकाट्य प्रमाणों से इस बात को सिद्ध किया कि वेदों में एक ईश्वर का विचार अत्यन्त स्पष्ट रूप में प्रतिपादित किया गया है। अन्य देव तो उसके गुणों तथा शक्ति के सूचक नाममात्र है।'

स्वामी दयानन्द के वेदों में विज्ञानविषयक मन्तव्य का विवेचन करते हुए श्री अरविन्द ने अपने निबन्ध 'Dayanand and the Veda' में लिखा है–

"दयानन्द की इस धारणा में कि वेद में धर्म और विज्ञान दोनों की सचाइयां पाई जाती हैं, कोई उपहासास्पद या कल्पनामूलक बात नहीं है। मैं इसके साथ अपनी भी धारणा जोड़ देना चाहता हूँ कि वेदों में विज्ञान की वे सचाइयाँ भी हैं जिन्हें आधुनिक विज्ञान अभी तक नहीं जान पाया है। ऐसी अवस्था में स्वामी दयानन्द ने वैदिक ज्ञान की गहराई के सम्बन्ध में अतिशयोक्ति से नहीं, अपितु न्यूनोक्ति से ही काम लिया है। श्री अरविन्द का यह भी कहना है– कि 'वेदों का अन्तिम तथा सम्पूर्ण भाष्य चाहे कुछ भी हो, ऋषि दयानन्द वेदों के यथार्थस्वरूप के प्रथम अन्वेषक के रूप में सदा प्रतिष्ठित रहेंगे। समय ने जिनको बन्द कर रक्खा था, ऐसे द्वारों की चाबी को उन्होंने पा लिया और उनमें बन्द स्रोत की सील (मुहर) को तोड़कर फेंक दिया।"

इस प्रकार अनेक नवीनताओं एवं विशेषताओं के कारण स्वामी दयानन्द का वेदभाष्य अत्यन्त उपादेय है।

अब हम अनुवाद शब्द पर विचार करते हैं। डा० नगेन्द्र के अनुसार 'अनुवाद' शब्द से आज अभिप्रेत है– किसी एक भाषा में प्रस्तुत अर्थ को अन्य भाषा में प्रस्तुत करना। यह शब्द अंग्रेजी शब्द 'ट्रान्सलेशन' के लिए रूढ़ हो गया है। 'ट्रान्सलेशन' शब्द एक अन्य अर्थ में भी प्रयुक्त होता है, जैसे किसी के व्यवहार आदि को समझना। आपने अनुवाद का वास्तविक अर्थ कहा है– किसी भाषा के प्रत्येक वाक्य को प्रायः सभी पदों का अर्थ देते हुए अन्य भाषा में प्रस्तुत करना 'अनुवाद' है।

शब्दकल्पद्रुम कोश में अनुवाद शब्द का एक अर्थ है अवधारित (किसी निश्चित अर्थ) को फिर कहना। चाहे वह उसी भाषा में ही क्यों न हो जिसमें मूल पाठ है। इस दृष्टि से भाष्य तथा टीका को भी 'अनुवाद' कहा जा सकता है। इन दोनों का रूप समान होता है, पर आर्ष ग्रंथों की व्याख्या को 'भाष्य' कहते हैं, और क्लासिकल संस्कृत के ग्रंथों की व्याख्या को टीका। इन दोनों का मूल स्रोत हम पद–पाठ और निरुक्ति–पद्धति को मान सकते हैं। पद–पाठ से तात्पर्य है संहिताबद्ध वेद मंत्रों के पदों को पृथक्–पृथक् करना, जिसके अंतर्गत संधिविच्छेद, उपसर्ग तथा उदात्तादि स्वरों पर भी प्रकाश डाला जाता है। इन पद पाठों का सुपरिणाम यह हुआ कि ब्राह्मण ग्रंथों में और आगे चलकर निरुक्त–ग्रंथों में शब्दों की निरुक्तियों का एक आधार पद–पाठ भी रहा। उदाहरणार्थ, यास्क के अनुसार 'मित्रः' की यास्क प्रस्तुत निरुक्ति है – मित्रः प्रमीतेस्त्रायते (निरुक्त 10. 21.2), (जो मरण से त्राण करता है, अर्थात् सूर्य और इस निरुक्ति का आधार है 'मित्रम्' पद का गार्ग्य प्रस्तुत 'मित्र' पदपाठ।

निर्वचन अथवा निरुक्ति से तात्पर्य है किसी शब्द का एक धातु अथवा अनेक धातुओं के साथ संबंध स्थापित करके उसका अर्थ निर्धारित करना । वेदों के मंत्रों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए ब्राह्मण ग्रंथों तथा आरण्यकों में कई स्थलों पर इस प्रक्रिया का आधार ग्रहण किया गया है। निरुक्त ग्रंथों में उपलब्ध और प्रख्यात यास्क प्रणीत निरुक्त में तो इसी प्रक्रिया का सांगोपांग

विवेचन करते हुए वेदों के मंत्रों की व्याख्या की गई है, तथा आगे चलकर वेदों के प्रख्यात भाष्यकर्ता स्कन्द, सायण आदि ने भी इसी पद्धति को अपनाया है। इतना ही नहीं, स्वयं ऋग्वेद में निर्वचन पद्धति के संकेत अनेक स्थलों पर मिल जाते हैं। जैसे कि (1) गायन्ति त्वा गायत्रिणो.... । (ऋ० 1. 10. 1) (2) अर्चन्तोऽक मदिरस्य पीतये । (ऋ० 1. 116. 7) । उक्त दोनों स्थलों में व्युत्पत्तिपरक संकेत स्पष्टतः उपलब्ध होते हैं कि 'गायत्रिन्' शब्द गै (गाना, स्तुति करना) से निष्पन्न होता है, और अर्क शब्द अर्च् (पूजा करना) से। इसी प्रकार से अन्य तीनों वेदों के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रंथों में भी निरुक्तियों के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं । इसके बाद यास्क का प्रख्यात ग्रंथ निरुक्त (निर्वचन शास्त्र अथवा व्युत्पत्तिशास्त्र) का उल्लेख है। परवर्ती और टीकाकारों ने अनेकानेक स्थलों पर निरुक्ति का आधार करते हुए अर्थ–निर्धारण किया है।

जैसा कि उपरोक्त रूप से वर्णित किया गया है कि अनुवाद का वास्तविक अर्थ कहा है– किसी भाषा के प्रत्येक वाक्य को प्रायः सभी पदों का अर्थ देते हुए अन्य भाषा में प्रस्तुत करना 'अनुवाद' है। जब हम इस मापदण्ड के आधार पर महर्षिकृत ऋग्वेद के संस्कृतभाष्य के हिन्दी भाषा में किये गये अनुवाद पर विचार करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि हिन्दी भाष्य में कोई पद–पाठ नहीं दिया गया है।

महर्षि ने अपने संस्कृतभाष्य में प्रत्येक मन्त्र का अन्वय लिखा है परन्तु अन्वय के आधार पर अनुवाद नहीं किया गया है, अपितु अनेक पदों का सम्मिलित रूप से सार रूप में अर्थ कर दिया गया है।

यदि कोई पाठक इस भाषानुवाद के आधार पर मन्त्र में लिखे गये पदों का अर्थ जानना चाहता है तो यह उसके लिये सम्भव प्रतीत नहीं होता है।

अनेक मन्त्रों के महर्षिकृत संस्कृतभाष्य और उसके हिन्दी में किये गये अनुवाद में भिन्नता पायी जाती है।

महर्षि ने कुछ मन्त्रों के ही संस्कृत भावार्थ का हिन्दी में अर्थ किया था। अन्य विद्वानों द्वारा किये गये गये अनुवाद में भिन्नता पायी जाती है। अनेक विद्वानों के मत इस विषय पर भिन्न हैं।

महर्षि कृत संस्कृतभाष्य और उसके हिन्दी में किये गये अनुवाद के विषय में पण्डित युधिष्ठर मीमांसक की पुस्तक ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास के पृष्ठ 155 पर यह अधोलिखित टिप्पणी द्रष्टव्य है–

वेदभाष्यों का भाषानुवाद –

वेदभाष्य का मूल संस्कृत भाग ही ऋषि दयानन्द विरचित है, भाषानुवाद पण्डितों से कराया हुआ है। इसलिये कई स्थानों में भाषा संस्कृत के अनुकूल नहीं हैं। वेदभाष्य के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द ने अपने पत्रों में इस प्रकार लिखा है–

१ "जो कहीं पद का छूट जाना है यह भाषा बनाने वाले और शुद्ध लिखने वाले की भूल है ।''....

समग्र रूप से भाषानुवाद को देखने पर ज्ञात होता है कि ये अनुवाद महर्षिकृत संस्कृतभाष्य का सही–सही रूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में पूर्णरूप से समर्थ नहीं हैं। महर्षिकृत ऋग्वेदभाष्य का मुद्रण सम्भवतः श्रावण संवत् १९३५ में मासिक अंक रूप में प्रारम्भ हुआ था। सम्पूर्ण भाष्य के छपने में लगभग २२ वर्ष लगे। इस प्रकार सम्पूर्ण भाष्य संवत् १९५७ तक प्रकाशित हो चुका था। प्रमाणस्वरूप पण्डित युधिष्ठर मीमांसक की पुस्तक ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास के पृष्ठ १४२ पर यह अधोलिखित टिप्पणी द्रष्टव्य है–

"*ऋग्वेदभाष्य के मुद्रण का आरम्भ तथा समाप्ति*

"ऋग्वेदभाष्य का मुद्रण सम्भवतः श्रावण संवत् १९३५ में मासिक अंक रूप में प्रारम्भ हुआ था। उनके जीवन काल में इस भाष्य के केवल ५१ अङ्क ही प्रकाशित हुए थे। जिन में प्रथम मण्डल के ८६ वें सूक्त के ५वें मन्त्र तक का भाष्य छपा था' । शेष समस्त भाष्य पूर्ववत् मासिक पत्रों में सं १९५६ के आषाढ़ कृष्णा ५ तक छपता रहा। अर्थात् सम्पूर्ण भाष्य के छपने में लगभग २२ वर्ष लगे। भाष्य कितने अङ्कों में छपा था, यह हमें ज्ञात नहीं हो सका।"

इस प्रकार ऋग्वेदभाष्य संवत् १९५७ तक प्रकाशित हो चुका था। उसके बाद पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार, पं०, हरिशरण सिद्धान्तालंकार और पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर आदि ने हिन्दी भाषा में ऋग्वेद के सम्पूर्ण भाष्य किये। वेद का प्रचार और प्रसार करना हम आर्यों का परम कर्त्तव्य हे, परन्तु हम एक सौ दो (१०२) वर्षों की दीर्घ अवधि व्यतीत होने के बाद भी महर्षिकृत संस्कृतभाष्य, जिस पर हम गर्व करते हैं, को आर्यभाषा में शुद्ध और सही रूप में

प्रस्तुत करने में असफल रहे हैं। ऐसे में वैदिक विद्वानों के द्वारा इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के बाद वाँछित शुद्ध भाषानुवाद किये जाने की नितान्त आवश्यकता है।

******

सर्वहित – जो तन, मन और धन सबके सुख बढाने में उद्योग करना है; उसको "सर्वहित" कहते हैं ।

चोरी त्याग – जो स्वामी की आज्ञा के बिना किसी के पदार्थ का ग्रहण करना है, वह "चोरी" और उसका छोड़ना "चोरी त्याग" कहाता है ।

व्यभिचार त्याग – जो अपनी स्त्री के बिना दूसरी स्त्री के साथ गमन करना और अपनी स्त्री को भी ऋतुकाल के बिना वीर्यदान देना तथा अपनी स्त्री के साथ भी वीर्य का अत्यन्त नाश करना और युवावस्था के बिना विवाह करना है; यह सब "व्यभिचार" कहाता है। उसको छोड़ देने का नाम "व्यभिचार त्याग" कहाता है।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

ये जो तुम सुनाते हो मनगढ़ंत बातें
बहुत अच्छी लगती है तेरी जुबानी
न कहीं लिखी मिलती किताबों में
धन कमाने हेतु करते हो मनमानी।

कभी रो कर कभी, हँस कर सुनाते
सत्य से नहीं जिसका कोई वास्ता
पिघल जाती है प्रजा तेरे झाँसे में
झूठ को बना बैठे कमाई का रास्ता।

विकृत कर बैठे हो संस्कृतियों को
गलत परंपराओं का करके प्रारम्भ
न जाने कहाँ से ढूंढ लाते हो बातें
क्या कहकर तुझे दें हम उपालम्भ।

परेशान है जग इन्हीं झूठी बातों से
कर लेती है तेरी वाणी पर विश्वास
क्या पहुँचा दोगे स्वर्ग में उन्हें तुम
लगा बैठे हैं जो तुमसे पूरी आस।

सच को झूठ, झूठ को सच कहते
कुछ समझते हो इसका परिणाम
दुनिया गलत राह को अपनाती है
मात्र स्वप्न रह जाता है मुक्ति- धाम।

स्वयं माया के बंधन में हो फँसे तुम
क्या कर पाओगे संसार का उद्धार
वाणी से बोल विज्ञान रहित बातें
कर रहे हो प्रत्यक्ष सत्य का संहार।

(गिद्ध गाथा से)

उपनिषद् का ईश्वर आहे

— ✍ यशस्विनी सिद्धि व संदीप मरे

ईशावास्यं इदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जिथाः मा गृधः कस्य स्विद् धनम्

हा मंत्र ईशावास्यो उपनिषदाच्या चाळीसाव्या अध्यायातील पहिला मंत्र आहे, ईशावास्योपनिषदाचे वैशिष्ट्य म्हणजे त्यात यजुर्वेदाच्या चाळीसाव्या अध्यायातील मंत्र कोणतीही बेरीज किंवा वजाबाकी न करता दिलेले आहेत।

मंत्रात असे सांगितले आहे की हे सर्व जग भगवंताने व्यापलेले आहे, जगातील जी काही सूक्ष्म गोष्ट आहे, त्यामध्ये भगवंताचे सामर्थ्य आणि सामर्थ्य आहे, त्या वस्तूद्वारे ती वस्तू आपले कार्य करण्यास सक्षम आहे, याचा अर्थ असा होतो की, जर देवाने आपली शक्ती त्या वस्तूध्व्यक्ती इत्यादींमधून काढून टाकली तर तो त्याचे कार्य करू शकत नाही।

जर आपण यावर थोडा विचार केला तर आपल्या लक्षात येईल की जगात दोन प्रकारच्या गोष्टी आहेत, एक जड आणि दुसरी चौतन्य. ज्या गोष्टींना आपण सजीव समजतो, त्या आपापल्या परीने आपलं काम करत असतात, असं आपल्याला वाटतं परंतु त्या सजीव वस्तू, ज्यांना आपण सजीव समजतो, त्याही ईश्वराच्या मदतीने कार्य करतात, परंतु आपण (म्हणजे चेतन वस्तू) आपल्या स्वतःच्या शक्तीने किंवा शक्तीने कार्य करत आहोत आणि जड वस्तू त्यांचे कार्य स्वतः करू शकत नाहीत हे आपल्याला समजते. त्यांना काम करण्यासाठी काही जाणकारांची मदत लागते।

जर आपण जड गोष्टींबद्दल बोललो, तर जड गोष्टी देवाने नियुक्त केल्या आहेत कारण मंत्रात सांगितल्याप्रमाणे तो (ईश्वर) सर्वत्र उपस्थित आहे आणि जे सर्वत्र आहे ते पदार्थ आणि चेतन दोन्हीमध्ये उपस्थित असेल।

म्हणूनच भगवंत पदार्थात उपस्थित असतो आणि त्याला गती देतो, त्याला (मूळ) त्याच्या कामात नियुक्त करतो आणि हे फक्त देवच करू शकतो, आपण आत्मा करू शकत नाही, कारण आपण कमी ज्ञानी, कमी सक्षम, मूळ इ. आहोत आणि निसर्ग स्वतः काही करू शकत नाही कारण तो जड आहे, म्हणून या जगाला हालचाल देणारा देव आहे।

मंत्राच्या पुढच्या भागात ऋषी सांगतात की, या जगात जे काही सुख, सुविधा आहेत, ते भगवंताने दिलेले आहेत, त्यामुळे ती वस्तू आपली नसून इतर कोणाची तरी आहे, अशा प्रकारे त्याचा वापर करावा। (म्हणजे देवाचीच आहे) आणि दुर्सयाची गोष्ट स्वतःची आहे असे मानणे किंवा म्हणणे ही चोरी आहे। म्हणून भगवंताने दिलेल्या वस्तूंचा लोभ न ठेवता त्याग करून उपभोग घ्यावाध्वापरला पाहिजे, त्यानंतर ऋषी म्हणतात की ही संपत्ती आमची नाही, म्हणजे दुसऱ्या कोणाची आहे, जी आम्हाला वापरण्यासाठी मिळाली आहे आणि तेही आपल्या कर्मानुसार प्राप्त झाले आहे।

जर आपण शाब्दिक अर्थ पाहिला तर, ईशा या शब्दाचा अर्थ वास्यम् म्हणजेच देवाने आच्छादित केलेला आहे, मग हे सर्व ईश्वराने झाकलेले आहे, मग जे झाकले आहे ते (इदम् सर्वम) म्हणजे हे सर्व देवाने झाकलेले आहे याचा अर्थ काय आहे? झाकलेले, याचा अर्थ असा की तो (ईश्वर) आत आणि बाहेर दोन्ही उपस्थित आहे, ईश्वर, जो या सर्वांमध्ये आहे, म्हणून ऋषींना असे म्हणायचे आहे की देव (जो भौतिक आणि चौतन्यपूर्ण गोष्ट आहे, जी आपण अनुभवू शकतो किंवा करू शकत नाही) तो सर्वांच्या आत आहे आणि आत राहून सर्वांना गती देत आहे, पुढे असे म्हटले आहे की (यत् किंच जगत्यम् जगत) जी

या जगातील सर्वात लहान वस्तूलाही देवाने व्यापलेली आहे, म्हणजेच त्यात देवाचाही वास आहे, आजच्या वैज्ञानिक युगात जगातील सर्वात लहान वस्तू म्हणजे इलेक्ट्रॉन ,प्रोटॉन आणि न्यूट्रॉन मानली जाते, त्याला वैदिक भाषेत सत्त्व, रजस आणि तम म्हणतात, हे सत्त्व, रज आणि तम, ते जड आहेत, मग ते हे जग कसे निर्माण करतात, याचा आपण कधी विचार केला आहे का? विचार केला नाही ना !

हे जड पदार्थ स्वतःच निर्माण करण्यास सक्षम नसतात, कारण ते एकमेकांशी बोलू शकत नाहीत की आपण तिघे मिळून एक पदार्थ बनवून जगाला चकित करतो, हे कधीच शक्य नाही, तुम्ही स्वतः सोबत ठेवा एखाद्या वस्तूशी बोलण्याचा प्रयत्न करा (जे या तीन पदार्थांनी बनलेले आहे, ती वस्तू तुमच्याशी बोलत आहे का ते पहा, मग त्याला विचारा की किती प्रोटॉन, किती इलेक्ट्रॉन आणि किती न्यूट्रॉन आहेत, नाही!! ती वस्तू बोलू शकत नाही कारण ती जड असते म्हणजेच तिच्यात चौतन्यचे कोणतेही गुण नसतात, त्यामुळे आता या जड गोष्टींवर कोण नियंत्रण ठेवते, त्यांच्याकडून काम कोण घेत आहे, आपण किंवा आपल्यासारखा आत्मा (म्हणजे स्त्रीध्पुरुषध्बाल)) हे पाहावे लागेल. इत्यादी किंवा कोणताही वैज्ञानिक अभियंता, त्यांच्याकडून कोणीही काम घेऊ शकत नाही। म्हणजे, आणखी काही शक्ती आहे जी आपल्या सर्वांपेक्षा मानव, प्राणी, पक्षी, आपण सर्वांपेक्षा श्रेष्ठ आहोत, आपण सर्वांपेक्षा शहाणे आहोत. आपल्यातील ती वस्तू बोलू शकत नाही कारण ती जड असते म्हणजे तिच्यात चौतन्यचे कोणतेही गुण नसतात, त्यामुळे आता या जड गोष्टींवर कोण नियंत्रण ठेवते, आपण आपल्या सर्वांपेक्षा अधिक शक्तिशाली आहोत, मग ती शक्ती कोणाची? ती शक्ती आहे ज्याला आपण देव म्हणतो किंवा काही लोक देव देखील म्हणतात, ती एक विशेष शक्ती आहे, ती विशिष्ट व्यक्ती नाही, ती सर्वव्यापी आहे, तीच जो हे जग चालवत आहे, त्यालाच देव म्हणतात, आता हे का? देव म्हणतात जर आपण विचार केला तर आपल्याला दिसेल की ईश्वर या शब्दाचा अर्थ जो ऐश्वर्यवान आहे, त्याला ईश्वर म्हणतात, तर ऐश्वर्य म्हणजे काय, आपण जे पाहत आहोत ते सर्व ऐश्वर्य आहे।

आपले घर, गाडी, बंगला, भाऊ, संपत्ती आणि हो आपले शरीर सुद्धा आपले ऐश्वर्य आहे, आपण किती बलवान आहोत, किती हुशार आहोत, किती श्रीमंत आहोत? हे आपण दाखवतो ? आपण कधी विचार केला आहे का की ही संपत्ती हे शरीर आहे आणि जे काही आपल्याजवळ आहे, आपणही त्याला पात्र आहोत, तर एकदा विचार करा की आपली क्षमता काय आहे, आपल्या घराच्या ऑफिसजवळ किंवा दुकानाजवळ किंवा आजपर्यंत कुठेही आपण अशी व्यक्ती पाहिली आहे का जी आपल्यापेक्षा सुंदर किंवा सामर्थ्यवान किंवा आपल्यापेक्षा अधिक हुशार? कोण आहे पण आपल्यापेक्षा जास्त आनंदी नाही, कारण कोणीही आपल्याला पाहू शकतो, आपण पाहू या की कोणत्याही बाबतीत आपल्यापेक्षा अधिक सामर्थ्यवान असूनही, जो आपल्यापेक्षा अधिक दुःखी आहे, त्याच्या दुःख काय कारण आहे?, तर आता आपल्याला इतके अनुभवता आले पाहिजे की आपल्याजवळ असलेल्या सर्व गोष्टींच्या आपण लायक नाही किंवा असे देखील म्हणू शकतो की या गोष्टी करण्यास सक्षम नसलेले इतर अनेक मानव आहेत. जे या साधनासाठी योग्य आहे. म्हणून आपल्याला ही साधने देणारा कोण आहे, तोच जगाच्या सर्व ऐश्वर्याचा स्वामी आहे, त्यानेच आपल्याला हे सर्व दिले आहे। ज्याच्याकडे असायला हवे होते पण नव्हते त्याला कोणी दिले, तो देणारा तोच देव आहे ज्याच्याबद्दल या मंत्रात म्हटले आहे (यत् किंच जगत्यं जगत्)! बाकी क्रमशः पुढील अंकात...

******

गरीबी और अमीरी के गुरु

– ✍ शकुंतला देवी

समाज में एक कहावत कही जाती है–पीलिया के रोगी को हर चीज पीली–पीली दिखती है। यह कहावत क्या व्यावहारिक रूप से सच है या महज कहावत ही है? इस पर मैंने एक पीलिया के रोगी से बात की तो बोला, बहनजी! ऐसा नहीं है। हमारे मन में जब यह कहावत घूमती रहती है तब ऐसा होता है, वरना पीलिया में शरीर के अंग पीले होते हैं, नजरिए में पीलापन थोड़े आ जाता है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि विश्वास और अंधविश्वास में ज्यादा फर्क नहीं है। हम सच जानते हुए भी यदि अंधविश्वासी बन जाएं तो वह खतरनाक है। फिर भी उसे खतरनाक न माने तो हालात दो अंधों जैसी होती जाती है। यदि विश्वास व अंधविश्वास को परिभाषित करें तो हम कह सकते हैं कि समझ–बूझ कर पूरे होशोहवाश में किसी वस्तु, व्यक्ति, घटना या कार्य पर यकीन करना विश्वास कहा जाता है , इसके उलट अंधविश्वास। रामनवमी के अवसर पर गुरुमहराज का प्रवचन सुन दोनों महिलाएं कटरा से लौट रही थीं। मेरी आदत है जब दो महिलाओं में कोई बहस या झगड़ा होते देखती हूं तो उनकी बहस व झगड़े को सुनने लगती हूं। मैं उनके पीछे–पीछे चल रही थी। मैं ऐसी किसी प्रसंग या कवायद से कुछ लिखने के लिए निकाल लेती हूं। मेरी रुचि यूं भी मनोविज्ञान, समाज और साहित्य के संदर्भों पर कुछ ज्यादा ही है।

उस दिन उन दोनों महिलाओं में जिनका नाम गायत्री और कमला था, बात ही बात में बहस होने लगी और बहस होते–होते झगड़ा होने लगा। झगड़ा इतना बढ़ गया कि यदि बीच–बचाव लोग न करते तो मार पीट होना तय था। इसमें एक महिला गांव की लग रही थी, दूसरी कस्बे या शहर की। वेशभूषा में कोई खास अंतर न होने पर मैं सोचने लगी, ये दोनों सहेली हैं या पड़ोसन! जब दोनों बहस करते–करते थक गईं तो मैं पूछ बैठी– आप दोनों ने जिस विषय पर बहस किया, वह विषय तो ठीक है, लेकिन बहस करते–करते झगड़ा करना, यह ठीक बात नहीं है। उसमें से एक क्षेत्रीय बोली बघेली बोल रही थी। मैं समझ गई, कम पढ़ी लिखी होने के कारण यह क्षेत्रीय बोली बोल रही है। अंधविश्वास का समर्थन वह ही कर रही होगी। लेकिन जब दोनों से बातचीत करते–करते घुलमिल गई तो पता चला कि मेरा अनुमान गलत निकला। अंधविश्वास को विश्वास की तरह मानने वाली महिला डिग्री धारी थी। वह मूर्तिपूजा के समर्थन में बोलते–बोलते आपा खो बैठी थी। उसका कहना था कि मूर्तिपूजा हमारी आस्था और भक्ति का सवाल है, इस पर तर्क नहीं किया जा सकता है। जो लोग इसकी खिलाफत करते हैं, वे नास्तिक लोग हैं। ऐसे लोग धर्म के भी विरोधी हैं। लेकिन ग्रामीण बघेली बोली बोलने वाली महिला का कहना था, बिना समझ–बूझ कर तर्क और विज्ञान के आधार पर ही किसी विषय या बात पर विश्वास करना चाहिए। आस्था और भक्ति भी पूरे होशोहवाश और समझ–बूझ के साथ करनी चाहिए। आंख मूंद कर किसी भी व्यक्ति, घटना, उपदेश या कार्य पर विश्वास नहीं करना चाहिए। पूछने पर पता चला, वह गुरुकुल की पढ़ी–लिखी है। उसने वेद शास्त्र की भी पढ़ाई की हुई है। मैने पूछा– ''यदि वेद शास्त्र पढ़ा है तो गुरुमहराज का प्रवचन सुनने क्यों गई थी? वह बोली, यह हमारी बचपन की सहेली है। इसने अपने गुरुमहराज की तारीफ की और प्रवचन सुनने का बार–बार आग्रह किया, तो भला कैसे टाल देती।'' लेकिन बहस करना तो ठीक है, झगड़ा करना किस प्रवचनकर्ता ने बताया है?'' मेडम! यह मुझे नास्तिक और झूठी कहने लगी, तब मुझे गुस्सा आया। आप ही बताइए. ....प्रवचनकर्ता जो कहें वह सही, वेद शास्त्र में जो लिखा है वह गलत। मूर्तिपूजा किस वेद शास्त्र में धर्म और

अध्यात्म का हिस्सा बताया गया है? इस सवाल का ह जवाब दे दे तो मैं अपनी गलती स्वीकार कर लूंगी और इससे माफी भी माग लूंगी।'' उस महिला की बात में मुझे दम लगा। मैंने उसकी सहेली से पूछा, ''बहन! तुम दोनों सहेली हो। बचपन से एक साथ पढ़ी–लिखी और पड़ोस में रहती भी हो। जिस विषय पर विचार विरोधाभाषी हैं, उन विचारों, मान्यताओं और धारणाओं में बगैर आग्रह–दुराग्रह के बात की हो?'' नहीं की। यदि तुम्हारे आग्रह को मानकर तुम्हारी सहेली प्रवचन सुनने चली आई तो तुम भी उसके कहने पर वेद शास्त्र पढ़ ली होती... फिर मूर्तिपूजा पर बहस करती तो किसी सार्थक परिणाम पर पहुंचती।'' मेडम! यह बताओ... गुरुमहराज क्या झूठ बोलते हैं? वे एक नहीं हजार बार अपने प्रवचन के दौरान कह चुके हैं कि धर्म और अध्यात्म के मामले में कभी तर्क नहीं करना चाहिए। जो सदगुरु महराज कहें उस पर आंख मूंद कर विश्वास कर लेना चाहिए।'' मतलब तुम वेद शास्त्र गुरुकुल में पढ़ी अपनी सहेली को बेवकूफ और अधर्मिणी समझती हो और गुरु महराज की हर बात को वेद वाक्य?'' ''हां... समझना ही चाहिए। हमारे धर्म में लिखा है, गुरु गोबिंद दोऊ खड़े काके लागे पाय। बलिहारी गुरु आप ने गोबिंद दियो बताय। आप ही बताओ मेडम जी, किसकी बात सही मानूं?'' यह बताओ बहन! ''आप ने कैसे समझ लिया की गुरुमहराज जो कह रहे हैं वे सभी बातें सही हैं और आप की सहेली जो वेद शास्त्र पढ़ी है, उसकी बातें झूठी और बेकार की हैं?'' बहन यह अपनी आस्था की बात है। मैं गुरुमहराज पर आस्था रखती हूं, वे जो कहेंगे...धर्म वाली ही बात कहेंगे.....भला उनकी तुलना गुरुकुल में पढ़ी अपनी गरीब घर की सहेली से कैसे कर सकती हूं? इतने बड़े आश्रम के मालिक हैं...गुरुमहराज। वे तो साक्षात भगवान रूप ही हैं। मैं उस महिला की बात सुन कर दंग रह गई कि गरीब होने का मतलब झूठा और बेवकूफ होना भी लोग समझते हैं...फिर विश्वास और अंधविश्वास जैसे संवेदनशील विषय पर कैसे कोई निर्णय ले सकता है।

सतरंगी दोहे

तड़क – फड़क बिजली करे, कृषक सुनें घबरायँ।
खुले गगन में जो फँसें, वे सब भी पछतायँ।।

पानी अमृत तत्व है, इसको सदा बचायँ।
जीवन का आधार यह, बेजा नहीं बहायँ।।
घूँट – घूँट कर ही सदा, पानी पीएँ आप।
भोजन सँग जो जल पिएँ, गैस, कब्ज हों ताप।।

हवा प्राण की तत्व है, करें भोर में योग।
पौधे खूब लगाइए, नहीं बढेंगे रोग।।

गुस्सा भी तूफान है, इससे बचिए आप।
सागर से भी कब बचें, बढ़ें सुनामी ताप।।

पेड़ झुकें आँधी चले, नहीं कभी घबरायँ।
विषम परिस्थिति ये कहे, नम्र सदा बन जायँ।।

डॉ राकेश चक्र

खाद्यान्न की बर्बादी ने कुपोषण और भुखमरी को किया आमंत्रित

– ✍ अखिलेश आर्येन्दु

जिस भारतीय संस्कृति में अन्न को देवता कहा गया है। थाली में भोजन छोड़ना अन्न के प्रति अनादर माना गया है, उस देश में करोड़ों टन भोजन रोज़ाना नालियों और गड्ढों में फेंक दिया जाता है। खाद्यान्न की बर्बादी को रोकने के लिए नारा दिया गया–भोजन उतना लो थाली में, जो व्यर्थ न जाए नाली में। लेकिन इस नारे का असर किसी भी भंडारे, उत्सव और शादी–ब्याह में दिखाई नहीं देता। मतलब साफ है, हम स्वयं को भले ही भारतीय संस्कृति के ध्वजवाहक बताते न थकते हों, लेकिन सच्चाई यह है कि दिनभर हम सांस्कृतिक और शैक्षिक मूल्यों की अवहेलना करने में ही समझदारी समझते हैं। यही वजह है कि देश में भुखमरी, कुपोषण और शोषण की समस्या से आजादी के पचहत्तर साल बाद भी निजात नहीं पा सके हैं। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की रिपोर्ट के मुताबिक भारत में पैदा होने वाला 40 प्रतिशत भोजन बेकार चला जाता है।, यह मात्रा ब्रिटेन में हर साल उपयोग होने वाले भोजन के बराबर है। देश में हर साल 25.1 करोड़ टन से अधिक खाद्यान्न का उत्पादन होता है। इसके बावजूद भारत में हर चौथा व्यक्ति भूखा या आधे पेट सोता है। कृषि मंत्रालय की फसल अनुसंधान इकाई सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ हार्वेस्ट इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी (सीफैट) की रिपोर्ट के मुताबिक, देश में हर साल करीब 87 लाख टन खाद्यान्न उचित भंडारण और कोल्ड स्टोरेज की मुकम्मल व्यवस्था न होने के कारण खराब हो जाता है। जिसकी कीमत 92 हजार करोड़ आंकी गई है। गौरतलब है बर्बाद हुआ खाद्यान्न उतना है जितना ब्रिटेन जैसे देश की खाद्य जरूरत होती है। इसी तरह हर साल 20 हजार करोड़ की सब्जियां और फल बर्बाद हो जाते हैं। गौरतलब है देश में हर साल तकरीबन 16.2 करोड़ टन सब्जियों और 8.1 करोड़ टन फलों का उत्पादन होता है। सीफैट हर साल फसलों की कटाई के बाद खाद्य पदार्थों पर अपनी रिपोर्ट कृषि मंत्रालय को देता है। इसके रिपोर्ट के मुताबिक, हर साल इसमें करीब 20 से 22 फीसदी तक फल और सब्जियां कोल्ड स्टोरेज और प्रसंस्करण के अभाव में खराब हो जाते हैं। यानी हर साल करीब 20 हजार करोड़ रुपये की फल–सब्जियां बर्बाद हो जाती हैं। इसी तरह 23 करोड़ टन दाल वितरण प्रणाली की खामियों की वजह से बर्बाद होती है। फीसैड के अनुसार, यदि फलों और सब्जियों को बर्बाद होने से रोकना है तो कोल्ड स्टोरेज की संख्या को दुगना करना होगा। हांलाकि अभी देश में 6500 से ज्यादा कोल्ड स्टोरेज हैं, जिनकी भंडारण क्षमता 3.1 करोड़ टन है। गौर करने वाली बात यह भी है कि सब्जियों में हर साल टमाटर, प्याज अलग–अलग कारणों से बाजार में पहुंचने के पहले ही बर्बाद हो जाते हैं। सीफैट की रिपोर्ट कहती है कि देशभर में हर साल कोल्ड स्टोरेज के अभाव में 10 लाख टन प्याज बाजार नहीं पहुंच पाती है। इसी तरह 22 लाख टन टमाटर भी अलग–अलग कारणों से बाजार नहीं पहुंच पाते हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि देश में हर साल कितने बड़े पैमाने पर खाद्यान्न, फल और सब्जियां बर्बाद हो जाते हैं। गौरतलब है, राज्य और केंद्र सरकार इस समस्या के समाधान के लिए ठोस कदम उठाने की बात तो करते हैं, लेकिन कोई खास पहल न होने की वजह से समस्या वहीं की वहीं बनी रहती है। गौरतलब है, समस्या के समाधान के लिए राज्य सरकारों ने अभी तक जितनी पहल की है, जब तक उन्हें अमलीजामा नहीं पहनाया जाएगा तब तक खाद्यान्न, फल और सब्जियों की बर्बादी को नहीं रोकी जा सकती है, और खाद्यान्न और सब्जियों के अभाव में पैदा होने वाली समस्याओं से निजात पाना नमुमकिन ही रहेगा।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के जरिए जारी फूड वेस्टेज इंडेक्स रिपोर्ट के अनुसार बीते सालों में दुनियाभर में अनुमानित 93.10 करोड़ टन खाना बर्बाद हो गया, जो वैश्विक स्तर पर कुल खाने का 17 फीसदी है। रिपोर्ट में कहा गया है कि भारतीय घरों में हर साल करीब 6.87 करोड़ टन खाना बर्बाद हो जाता है। वहीं पर दूसरी तरफ घरों और दूसरे जगहों पर बर्बाद होने वाला भोजन करोड़ों टन है। आंकड़े के अनुसार 93.10 करोड़ टन बर्बाद खाने में से 61 फीसदी हिस्सा घरों से, 26 फीसदी खाद्य सेवाओं और 13 फीसदी खुदरा जगहों से आता है। यह तब है जब शादियों व समारोहों में फिजूलखर्ची पर रोक लगाने के लिए 2006 से अधिनियम लागू है। यदि इसका सख्ती से पालन किया जाए तो, भोजन की बर्बादी काफी हद तक रोका जा सकता है। यदि प्रति व्यक्ति का आंकड़ा लगाया जाए तो देश में 12.1 किलो खाने की बर्बादी हो रही है। इसमें घरों के हिसाब से प्रति घर 74 किलो पड़ता है। यानी भारतीय घरों में 68,760,163 टन खाना हर साल बर्बाद होता है। भोजन बर्बाद करने वालों में भारत दक्षिण एशियाई देशों की सूची में 82 किलो के साथ अफगानिस्तान सबसे ऊपर तो है, लेकिन भारत भी उसी के आस पास है। यह उस भारत की हाल है जहां रोजाना तकरीबन 194 मिलियन लोग आधे पेट सोने के लिए मजबूर है।

वैश्विक भूख सूचकांक बताता है कि भारत को महाशक्ति बनने के लिए 117 देशों से आगे निकलना पड़ेगा। इसके लिए कृषि, उद्योग, स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में लम्बी छलांग होगी। खासकर कृषि उत्पादों के रखरखाव और विपरण में सुधार करना होगा। मिसाल के तौर पर मध्य प्रदेश में पिछले दो साल में 100 लाख टन गेहूं, 4 लाख टन धान, और 1 लाख टन मूंग और उड़द का भंडारण हुआ। गेहूं भंडारण में से इस साल 5 लाख टन बेचे जाने की प्रक्रिया शुरू हुई है। इधर गोदाम वालों ने ज्यादा मुनाफे के लिए कुछ नए पैतरे अपनाने लगे हैं। जिस मध्य प्रदेश का गेहूं भारत भर में सबसे महंगा और अच्छे किस्म का माना जाता है, उस प्रदेश की हालात यह है कि लाखों टन गेहूं रखरखाव के अभाव में हर साल खराब हो रहा है। प्रदेश में गोदामों में 1 करोड़ टन गेहूं पिछले दो सालों से भरा हुआ है, जिसमें से 10 लाख टन खराब हो गया है। बावजूद इसके लिए सरकार को हर महीने 60 करोड़ रुपये किराया देना पड़ रहा है। इसमें खराब गेहूं का किराया भी शामिल है। खराब गेहूं की कीमत 200 करोड़ रुपये हैं। सालभर में गोदामों के किराए का ही 700 करोड़ रुपये से अधिक भुगतान करना पड़ रहा है। गोदामों में रखा गेहूं खराब हुआ, इसका भौतिक सत्यापन नहीं हुआ है। यह एक प्रदेश के अन्न भंडारण, विपरण और रखरखाव का किस्सा है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि देश भर में हर साल कितने बड़ी तादाद में खाद्यान्न, फलों और सब्जियों की बर्बादी होती है।

इंडियन इंस्टीटयूट की रिपोर्ट बताती है कि भारत में हर साल 23 करोड़ टन दाल, 12 करोड़ टन फल और 21 करोड़ टन सब्जियां वितरण प्रणाली की खामियों की वजह से बर्बाद हो जाती हैं। गौर करने वाली बात यह है कि भारत में शादी–ब्याह जैसे तमाम आयोजनों में हजारों टन भोजन की बर्बादी हो रही है, लेकिन इस बर्बादी की तरफ आम जनता का कोई ध्यान नहीं है। उन लोगों को भी ध्यान नहीं है, जो स्वयं को समाज का जिम्मेदार व्यक्ति मानते हैं। इस बर्बादी को रोकने के लिए महिलाएं काफी हद तक जिम्मेदार हैं। यदि वे घर, उत्सव और समारोहों में खाद्यान्न की बर्बादी के खिलाफ आगे आएं तो समस्या का काफी हद तक समाधान किया जा सकता है। गौरतलब है, सरकारी लपरवाही की वजह से ही नहीं खाद्यान्न, फलों और सब्जियों की बर्बादी हो रही है बल्कि आम आदमी भी अपनी आदतों के चलते इस बर्बादी के प्रति कोई ध्यान नहीं दे रहा है। इसी तरह आस्था, आदत, हैसियत दिखाने और लापरवाही की वजह से देश में सैकड़ों टन दूध बर्बाद हो जाता है। यह उस देश में होता है जहां दूध के अभाव में लाखों बच्चे कुपोषित और मौत के शिकार हो जाते हैं। ऐसा लगता है हमारी आदत संसाधनों, खाद्यान्नों, फलों, सब्जियों,

पानी और दूध बर्बाद करने की ऐसी हो गई है कि हम समझ ही नहीं पाते कि यह बर्बादी है कि सामान्य बात। दरअसल, भारत में 'दिखावा' स्टेटस सिममबल बन गया है। इसका सबसे अधिक प्रभाव अपरिग्रह जैसे मूल्य के समाप्त होने पर पड़ा है। वस्त्र, कई तरह के फैशन के संसाधन, खाद्यान्न और फर्नीचर जैसे आधुनिक जीवनशैली के आवश्यक वस्तुओं को अनावश्यक जोड़ने की हमारी आदत लगातार बिगड़ती गई है। इस आदत के कारण जीवन से मानव मूल्य और सामाजिक मूल्यों का तेजी से क्षरण हुआ है। गौरतलब है, खाद्यान्न, फलों और सब्जियों को अनावश्यक खरीद कर उन्हें बर्बाद करने की आदत इस तरह से हो गई है कि हम कभी विचार ही नहीं करते कि हर साल कितनी वस्तुएं और खाद्यान्न हम बर्बाद कर देते हैं। दरअसल, अतिवाद, अंधश्रद्धा और अंधआस्था ने हमारी चिंतन धारा को कुंद कर दिया है। एक तरफ लाखों लोग भरपेट भोजन के लिए तरस रहे हैं, भोजन न मिलने पर बच्चे कुपोषित और भुखमरी का शिकार हो रहे हैं, तो दूसरी ओर लोगों के पास इतना ज्यादा भंडार वस्तुओं और धन–सम्पत्ति का है कि वे उसका उचित इस्तेमाल करना नहीं जानते। देश में महज खाद्यान्न, फल, सब्जी या दूध की बर्बादी की समस्या नहीं है, बल्कि यह हमारी जिंदगी का अहम हिस्सा बन गया है। इसलिए इस समस्या से निपटने के लिए देश के हर व्यक्ति को समझदारी ही नहीं दिखानी होगी, बल्कि जिम्मेदारी भी निभानी होगी।

आर्ष क्रान्ति पत्रिका के लिए आर्य लेखक बन्धु अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ भेंजे।

गीत

प्रिय प्रेम गीत मिल गाएं
अनहित के दुर्भाव सहज तज
जीवन सरस निभाएं
प्रिय प्रेम गीत मिल गाएं।
मन के अधर सूख न जाएं
उर से उर को मिलाएं
टूटी डोर प्रेम माला की
आओ पुनः सजाएं
तमस के तटबंधों को तोड़ें
नव प्रकाश की धारा जोड़ें
बन जाए मणिमाला मन की
सब का हिय सरशायें
बरसे प्रेम घनघोर घटा बन
तपती धरणि अघाये
रस रस बरसें जीवन के घन
घृणा भाव मर जाए
हित अनहित के पाट बँधें न
सर्वहित भाव सजाएं
क्रोध, द्वेष को छोड़ संवर कर
सोया भाग्य जगाएं।

– ✍ अखिलेश आर्येन्दु